CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गांधी अभिनंदन-ग्रंथ

संपादक
सोहनलाल द्विवेदी

भूमिका लेखक
सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

प्रकाशक
अवध-पब्लिशिंग-हाउस, लखनऊ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ लक्ष्मीदामोदर लक्षणम् ।

स्कन्दपुराणे—

वर्त्तुलः कृष्णवर्णाढ्यो मध्यचक्रसमन्वितः ।
श्वेतबिन्दुसमायुक्तो लक्ष्मीदामोदरस्मृतः ॥

धनधान्यसमृद्धिः स्यात्पुत्रपौत्रादिवर्धनः । पशुवृद्धिकरो देवो गृहीणां सर्वकामदः । इति । अयमप्यनुक्त चक्रसंख्याकत्वात्प्रकरणगतदामोदरमूर्त्ति-चक्रद्वयसम्बन्धाच्च द्विचक्र एव । इतिदामोदरमूर्त्तिलक्षणम् ॥

अथ सङ्कर्षणलक्षणम्

ब्राह्मपाद्मपुराणयोः—

द्वेचक्रे एकसंलग्नेपूर्वभागेऽतिपुष्कलः ।
सङ्कर्षणः स विज्ञेयो रक्ताभश्चाति शोभन इति ॥

विहगेन्द्रसंहितायाम्—स तु सङ्कर्षणो देवो दीर्घवृत्तोऽरुणच्छविः । द्वे चक्रे एकसंलग्ने भागैके पुष्कलो भवेत् । ह्रस्व लाङ्गल चिह्न च पार्श्वे वा पृष्ठतोऽथवा । दृश्यते विहगाधीश सङ्कर्षण इति स्मृतः । इति ।

तथाऽन्यत्र । द्वे चक्रे एकसंलग्ने भागैकः पुष्कलो भवेत् । संकर्षणः

लक्ष्मी दामोदर का लक्षण—

स्कन्दपुराणमें—

लक्ष्मी दामोदर वर्तुल, कृष्ण वर्ण के, मध्य भाग में चक्र के रहते सफेद बिन्दु से युक्त कहे गये हैं ।

उनकी पूजा से धनधान्यादि की समृद्धि होती है। पुत्र-पौत्रादि सन्तान बढ़ती है। वह देव पशु वृद्धि करने एवं सभी ईप्सित फल को देने वाले हैं । इनकी भी चक्रसंख्या नहीं बताई गयी है, प्रकरण में दामोदर मूर्तिपर दो चक्रों के सम्बन्ध रहने से दो चक्र के ही होते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

अब दामोदरजी के पश्चात् संकर्षणजी के लक्षण कहे जाते हैं । ब्रह्म और पद्मपुराणों पर—पूर्वभाग में दो चक्र एक ही जगह पर जुटे हों और अत्युत्तम रक्तवर्ण की सुन्दर मूर्ति हो तो उनको सङ्कर्षण जानना चाहिये ।

विहगेन्द्र संहिता पर कहा है कि वही सङ्कर्षण देव हैं जो दीर्घ गोलाकार, लाल वर्ण के हों, एक ही पर दो चक्र सटे हों, एक भाग अत्युत्तम हो, छोटा हलका जैसा चिन्ह भी पृष्ठ वा पार्श्व भाग में हो और गरुड़जी भी दीखते हों तो उनको संकर्षण जानना चाहिये ।

अन्यत्र भी—

दो चक्र एक पर जुटे हों, एक हिस्सा खूब श्रेष्ठ हो, लालवर्ण हो, और सुन्दर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सविज्ञेयो रक्ताभश्च सुदर्शन इति । भागैक इति पूर्वभागो ग्राह्यः । पूर्वभाग इति विशेपवचनात् । आग्नेये-ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्तवर्णक इति अत्र लग्नचक्रत्वस्य विहितत्वाद्वक्ष्यमाणनिषेधो न प्रवर्तते । इति ।

वामनपुराणे—शंखचक्रगदाकूर्ममत्स्याङ्को यश्च दृश्यते । संकर्षणस्तु देवानां सद्योलक्ष्मीप्रदायक इति ।

वराहपुराणे—चक्रद्वयसमायुक्तः कपिलेन च संयुतः ।
असौ सङ्कर्षणोनाम यतिभिः पूज्यतेसदेति ॥

अयमपि द्विचक्रः स्पष्ट एव । इति सङ्कर्षणलक्षणम् ।

अथ वासुदेवलक्षणम्

स द्विविधः शुद्ध शान्तश्चेति । तत्राद्यो ब्रह्मपुराणवैखानससंहितयोः-
द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरीयके ।
वासुदेवः सविज्ञेयः शुक्लाभश्चाति शोभन इति ॥

तत्रोत्तरत्र शुक्लभास्करयात्विषेतिपाठान्तरम् ।

मूर्ति हो तो उन्हें सङ्कर्षण जानना चाहिये । "भागैकः" का माने पूर्व भाग जानें । क्योंकि उसके लिये विशेष वचन भी है ।

अग्निपुराण में कहा है कि—

लगे हुए दो चक्र और लाल वर्ण के सङ्कर्षण जी होते हैं । यहाँ पर लग्न चक्र कहा है अतः विशेषविहित होने से निम्नाङ्कित निषेध नहीं होगा ।

वामनपुराण में—शंख, चक्र, गदा, कूर्म और मत्स्याकार चिह्न का जो दिखाई देता है वह उसी क्षण में लक्ष्मी को देने वाले देवताओं के संकर्षण देव कहलाते हैं ।

वराहपुराण में—कपिल वर्ण के दो चक्र वाले सङ्कर्षण देव संन्यासियों के सदा पूज्य हैं । इनको भी साफ द्विचक्री जानना चाहिये ।

सङ्कर्षण लक्षण समाप्त हो गया ।

वासुदेवजी का लक्षण—

वासुदेव भी शुद्ध और शान्त के भेद से द्विविध होते हैं । उनमें से पहले के ब्रह्मपुराण और वैखानस संहिता के अनुसार लक्षण बताये जाते हैं । द्वार देश के नजदीक ही बराबर के दो चक्र दीखते हों, शुक्लवर्ण की मूर्ती भी सुन्दर दीखती हो तो वह वासुदेव जी हैं । अन्तिम चरण में "शुक्लभास्करया त्विषा" ऐसा भी पाठान्तर है । मतलब "श्वेत प्रभाशाली कान्ति में युक्त" ऐसा अर्थ होता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्मपुराणे—द्वारदेशे समेचक्रे दृश्यते नान्तरीयके। वासुदेवः स विज्ञेयः सुशुक्लाभः सुशोभन इति। नान्तरीयके गह्वरान्तस्थेनेत्यर्थः।
अग्निपुराणे—

वासुदेवः सितो द्वारि शिलालग्नद्विचक्रक इति। शिलायांलग्ने संयुक्ते इत्यर्थः। विष्णुरहस्ये—द्वारभागे समेचक्रे दृश्यते नान्त[1]रीयके। वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लः पीताम्बरोऽव्ययः। इति। अयमेवपीतवर्णाम्बरचिह्नितः सन्नव्ययो भवतीति प्रसङ्गाद्युक्तम्। तथा—

वासुदेवो जगद्योनिः पीतवर्णेन चिह्नितः।
चक्रे द्वारप्रदेशे च सौख्यदः परिकीर्त्तित इति॥

अत्रापि प्रसंगात्पूर्ववज्जगद्योनेरपि लक्षणमुक्तम्। तथा-वामपार्श्वे स्थिते चक्रे सितवर्णेन मिश्रितः। वासुदेव स विज्ञेयो विप्राणां भुक्तिमुक्तिद इति। अत्रविप्राणामितिवाक्यशेषान्नक्षत्रियवैश्ययोः पूजने अधिकार इति।

पद्मपुराण पर—

द्वारदेश में बराबर के नजदीक ही लगे दो चक्र दीखते हों और खूब शुक्लवर्ण की अति सुन्दर मूर्ति हो तो उनको वासुदेवजी जानना चाहिये। "नान्तरीयके" का मतलब तो नजदीक में ही कहना ठीक है परन्तु मूल में "गह्वरान्तःस्थेन" गुफा के अन्दर रहने से ऐसा अर्थ समझाया है।

अग्निपुराण पर—

वासुदेव द्वारभाग में श्वेत वर्ण के और शिला से लगे दो चक्रवाले होते हैं। लग्न का मतलब संयुक्त से है। विष्णुरहस्य पर—द्वारभाग में समान आकार के नजदीक पर दो चक्र हैं तो उनको शुक्लवर्ण के पीताम्बरधारी और अव्यय भगवान वासुदेव जानना चाहिये। अर्थात् पीताम्बरधारी से दीखते हों तो उन्हीं वासुदेव को अव्यय जानना चाहिये। यह प्रसङ्गवश समझना चाहिये।

तथा—द्वारदेश में दो चक्रों के रहने से पीतवर्ण से चिन्हित हों तो जगद्योनि भगवान वासुदेव सौख्यदायी कहलाते हैं। यहाँ पर भी इस लक्षण से वासुदेवजी को पूर्ववत् जगद्योनि भी जानना चाहिये।

तथा—वाम भाग में चक्रों के रहते शुभ्रवर्ण से मिश्रित हों तो उनको ब्राह्मणों के लिये भुक्ति मुक्ति के देनेवाले वासुदेवजी जानना चाहिये।

---

१ अन्तरं प्रतिबन्धादिभिर्व्यवधानं तदनु भवतीत्यर्थे छप्रत्ययेऽन्तरीयमिति ततश्च-स्वार्थेकनि "अन्तरीयक"मिति ततो नञर्थकेननेनं "सुप्सुपा" इति समासे नान्तरीयकमिति द्विवचने नान्तरीयके। नान्तरीयकशब्दोऽवश्यं भाविनिव्याप्तौ च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्ड पुराणे--

स्थूलशिला महाचक्रं श्यामचक्रंच वारुणम् ।
वासुदेवं च विज्ञेयं सर्वयज्ञफलप्रदम् ।। इति

वारुणं जलजमित्यर्थः ।। ग्रन्थान्तरे—कृष्णा शिला तु देवस्य सूक्ष्मचक्रंच दृश्यते । वासुदेवस्य चिन्हन्तु सर्वपापहरं शुभमिति । अयमपि द्विचक्रः स्पष्ट एव ।

अथ शान्तवासुदेवलक्षणम्

वाराहे—रेखापद्मायुधधरो हिमांशु सदृशप्रभः । नाभिचक्रधरः शान्तो वासुदेवः प्रकीर्तितः । इति । अस्यनाभिचक्रत्वकथनात्त्रिचक्रत्वम् । इतिवासुदेवमूर्त्ति लक्षणानि ।

अथ प्रद्युम्नलक्षणम्

ब्रह्मपाद्मपुराणविष्णुरहस्यवैखानससंहितासु—

प्रद्युम्नःसूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीप्तिस्तथैव च ।
सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकारं च यद्भवेत् ।। इति

यहाँ पर "विप्राणाम्" ऐसा पद आया है अतः ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्यादि के लिये इस मूर्ति की पूजा में अधिकार नहीं है ।

ब्रह्मपुराण पर कहा है कि जो शिला स्थूल हो, महाचक्र और श्यामचक्र, वारुण यने शंख वा कमल भी दीखते हों उनको जानने के लायक सभी यज्ञ (अश्वमेध वाजपेयादि वा अष्टका दर्शपौर्णमासादि) के फलदाता भगवान वासुदेव कहते हैं । इस श्लोक में "आहुः" ऐसा जोड़ना नहीं तो वासुदेव शब्द नपुंसक नहीं हो सकता है । वारूण माने जलजात ।। ग्रन्थान्तर में भगवान् वासुदेव मूर्ति की शिला काली और चक्र सूक्ष्म दीखता है । वह शिला पापहारिणी एवं शुभ है । यह भी द्विचक्र ही हैं ।

शान्त वासुदेव का लक्षण—

रेखा और पद्मआयुध के धारण करने वाले, चन्द्रमा के सदृशकान्तिमान् नाभिचक्र धारी हों तो "शान्तवासुदेव" कहलाते हैं । इनको त्रिचक्र जानना चाहिये क्योंकि नाभी पर भी चक्र बताया है--

वासुदेवजी का लक्षण समाप्त होगया ।

प्रद्युम्नजी के लक्षण—

ब्रह्म और पद्मपुराण तथा विष्णुरहस्य एवम् वैखानससंहिता पर कहा है कि प्रद्युम्नजी पीतवर्ण के दीर्घाकार होते हैं, मूर्ति पर सूक्ष्म चक्र होता है और छिद्र खूब होते हैं । सुषिर कहते हैं छिद्र को, यहाँ पर फिर से "छिद्र बहुलम्"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुषिरं गह्वरं तद्विशेषणं छिद्रबहुलमित्यादि ।। शखासु छिद्रबहुलमिति वा पाठः । सुशिराइत्यादि तालव्यमध्यपुलिङ्ग पाठे प्रद्युम्नइत्यस्य विशेषणं ज्ञेयम् । सर्वमूर्त्तिलक्षणवाक्येषु तद्ग्रन्थगता नानाविधाः पाठभेदाः, ते तु लक्षणसाङ्कर्यादिभयादत्र नलिखिता इति । पञ्चरात्रागमे—

पिङ्गलः सूक्ष्मचक्रात्मा प्रद्युम्नश्चातिसुन्दरः ।
सुच्छिद्रबहुलः प्रौढदेहवान् गण्डकीमणिरिति ।।

ब्रह्माण्डपुराणे––प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतवर्णस्तथैव च । मकराभो-भवेद्रेखा पार्श्वतः पृष्ठतोथवेति ।। गरुडपुराणे—

प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतवर्णस्तथैव च ।
सुषिरः सूक्ष्मबहुलो दीर्घाकारस्तथा भवेदिति ।।

बहुसूक्ष्मसुषिर इत्यर्थः । अग्निपुराणे––सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलवर्णक इति । पद्मपुराणे—प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रः स्यान्नीलाम्बुजनिभस्त-था । स ददाति श्रियं नृणामभक्त्याऽपि प्रपूजित इति । एतस्यानुक्तचक्र-संख्याकत्वाद् द्विचक्रत्वमेव । इति प्रद्युम्नलक्षणम् ।

ऐसा पाठ आया है इसलिये सुषिर शब्द का गह्वर (गुफा) अर्थ—जानना चाहिये । अथवा "छिद्रबहुलम्" "सुषिरम्" का ही विशेषण है, (अर्थात् सुन्दर छिद्र खूब हों, ऐसा अर्थ है) ।। "सुशिराः" ऐसा तालव्य शकारादि शिरस शब्द समझा जाय तो "सुन्दर शिरवाले प्रद्युम्नजी" ऐसा भी अर्थ होता है । अतः छिद्र शब्दार्थ वाची पुनरुक्ति दोष नहीं है । वास्तव में सभी मूर्तियों के लक्षण वचनों पर उन उन ग्रन्थों में कई पाठभेद पाये जाते हैं किन्तु वे सब लक्षणों की खिचड़ी उबालना ठीक नहीं इसलिये वे नहीं लिखे गये हैं ।

पञ्चरात्रागम पर––

पिङ्गल, सूक्ष्म चक्रस्वरुप, अति सुन्दर अच्छे छिद्रों से संयुक्त मजबूत आकार के प्रद्युम्नजी होते हैं । वह गण्डकी नदी के शिला स्वरूप मणि ही हैं ।

ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार कहा है––

भगवान् प्रद्युम्नजी दीर्घाकार खूब, सूक्ष्म छिद्रवाल, पीतवर्ण के और सूक्ष्मचक्र से युक्त होते हैं । बहुत ही सूक्ष्म छिद्र होते हैं ऐसा अर्थ जानना चाहिये ।

अग्निपुराण पर––प्रद्युम्नजी सूक्ष्म चक्र, बहुछिद्र और नीलवर्ण के होते हैं ।

पद्मपुराण में—

नीलकमल के सदृश, सूक्ष्मचक्र के प्रद्युम्नजी होते हैं । वह भक्तिरहित होकर पूजा करने से भी मनुष्यों के लिये परमैश्वर्य को देते हैं । इनकी चक्रसंख्या नहीं बताई गई है, अतः द्विचक्र जानना चाहिये ।

प्रद्युम्नजी का लक्षण समाप्त हुआ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथानिरुद्ध लक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—

अनिरुद्धोद्विधाज्ञेयस्तत्तल्लक्षणभेदत इति ।

ब्राह्मपाद्मपुराणयोः—

अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्त्तुलश्चातिशोभनः ।
रेखात्रयं च तद्द्वारे पृष्ठं पद्मेन लाञ्छितमिति ॥

ब्रह्मपुराणे—कृष्णवर्णः समद्वारश्चक्राभ्यां परिभूषितः । सूक्ष्मचक्रं-भवेदूर्ध्वं पार्श्वेबकुलपुष्पवत् । अनिरुद्धःपीतवर्णो वर्त्तुलश्चातिशोभनः । सोऽनिरुद्ध इतिख्यातः सर्वलोकैककारणम् ॥ इति ।

अग्निपुराणे—पीतोऽनिरुद्धः पद्माङ्को वर्त्तुलोऽसौ त्रिरेखवानिति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

कृष्णवर्णः समद्वारश्चक्रं भित्तिसमीपगम ।
सूक्ष्मं चक्रं भवेदूर्ध्वं पार्श्वे चणकपुष्पधृक् ॥

अनिरुद्धइतिप्रोक्तः सर्वलोकैककारणमिति ॥

वाराहे—जपाकुसुम सङ्काशं वनमालाविभूषितम् । धनुर्बाणाम्बुजधर-मनिरुद्धं विचेष्टितमिति ।

अनिरुद्ध लक्षण--

ब्रह्मपुराण में कहा है कि तत्तत् लक्षण के भेद से अनिरुद्धजी दो प्रकार के होते हैं ।

ब्रह्म और पद्मपुराणों पर--अनिरुद्धजी नीलकान्ति के गोलाकार सुन्दर द्वार-भाग में तीन रेखाओं से युक्त पृष्ठभाग में पद्म से लाञ्छित होते हैं । ब्रह्मपुराण में—समान द्वार और चक्र से भूषित काले वर्ण के भगवान् अनिरुद्धजी होते हैं जिनके ऊपरी भाग में सूक्ष्म चक्र होता है, पार्श्वभाग बगुले के फूल के जैसे होते हैं, वर्ण पीला, आकार गोल और स्वरूप सुन्दर होता है । वह सभी लोक के एक-मात्र कारण भगवान अनिरुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

अग्निपुराणमें--

पीतवर्ण के अनिरुद्ध जो हैं वह पद्मचिह्न के, तीन रेखावाले गोलाकार होते हैं ।

भीत के नजदीक (बगल) पर समान द्वार और चक्र हों, ऊपर सूक्ष्म चक्र हो, पार्श्वभाग में चने का पुष्पसा चिन्ह धारण की हो तो उस मूर्ति को सभी लोक के एक मात्र कारण भगवान् अनिरुद्ध कहते हैं । वराह पुराण पर कहा है कि जपाकुसुम के सदृश (लाल) वनमाला से अलंकृत , धनुर्बाण और कमल के धारण किये हुए भगवान् अनिरुद्ध जी हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा–एतद्‌लक्षणसंयुक्तं सूक्ष्मचक्रं लसन्मुखम् । सौवर्णरूप्यरेखाढ्यमनिरुद्धं विदुर्बुधा इति । अयमपि द्विचक्र एव । इत्यनिरुद्धलक्षणम् ।

अथ शुद्धत्वतत्तन्मूर्त्तिविशिष्टत्वभेदभिन्नाऽनेकधामूर्त्तेः पुरुषोत्तमस्य-मूर्तिभेदनिर्णयपूर्वकं लक्षणान्युच्यन्ते । नन्वनुपपन्नं पुरुषोत्तममूर्त्तिभेद कथनम् । पुरुषोत्तम एव च, अधोक्षजश्चेत्येकैकभेद उक्त इत्युद्देशवाक्य-विरोधादिति चेन्न । माधवः शेषशाय्यपीत्यत्र दामोदरो लक्ष्मीपूर्वः शुद्धश्च पुरुषोत्तम इत्यत्र च पुरुषोत्तममूर्त्तेः शेषविशिष्टत्व तद्रहितत्वरूप-भेदेनाऽनेकधात्वस्योद्देशस्य कण्ठोक्तत्वात् । तत्र शेषशायीति शेषपर्यङ्क-शायी पुरुषोत्तम इत्यर्थः । उत्तरत्र शुद्धःपुरुषोत्तमश्चेत्यर्थः । शुद्धश्चेति

तथा—

इन लक्षणों से युक्त, सूक्ष्म चक्र, खिले वदन और सुवर्ण वा चाँदी की जैसी रेखाओं से सुन्दर मूर्ति को पण्डित लोग अनिरुद्ध जी कहते हैं ।

यह भी दो ही चक्र के हैं । अनिरुद्ध जी का लक्षण समाप्त हुआ ।

अब नाम मात्र की (शुद्ध) और तत् तत् नाम पर विशेषण युक्त भेद से भिन्न कई मूर्तियों के लक्षण पुरुषोत्तममूर्तिभेद के निर्णय पूर्वक बताये जाते हैं ।

आप ऐसा न कहिये कि–पुरुषोत्तम ही तो अधोऽक्षज भी हैं, नाममात्र ही न भिन्न है, उद्‌देश वाक्य में "पुरुषोत्तम एवं च, अधोऽक्षजश्च" ऐसा एकैकभेद वा अभेद ही माना है, नहीं तो वह विरुद्ध होगा । इस वास्ते पुरुषोत्तम मूर्त्तियों का भेद कहना ठीक नहीं है ।

"माधवः शेषशाय्यपि" "दामोदरो लक्ष्मीपूर्वः···" "शुद्धश्च पुरुषोत्तमः" इत्यादि वाक्यों में शेष सहित माधव वा माधव मात्र, दामोदर मात्र वा लक्ष्मी दामोदर एवम् शुद्ध पुरुषोत्तम इत्यादि रूप से कई भेद मानकर शास्त्रकार ने सबके नाम सदृश लक्षण भी मुक्तकण्ठ से कहा है, सो यदि भेद को बताना नहीं होता तो फिर क्यों कहा ? कहा तो जानिये कि नामानुकूल मूर्तिभेद होते ही हैं । इसलिए वहाँ पर शेषशायी ऐसा जो कहा है उसका अर्थ यह है कि शेषरूप पलङ्ग पर शयन करने वाले अर्थात् पुरुषोत्तम । (आप यह तो नहीं कह सकते कि भगवान् सदा शेष पर शयन करके ही रहते हैं, अन्यत्र नहीं, क्योंकि अव्याप्ति दोष होगा । वह सदा सर्वत्र हैं । जब उनको व्यापक मानते हैं तो जिस अंश में व्यापकता रूप से उन्हें अन्यत्र भी मानते हैं उस अंश में शेषशायी मात्र न होने के कारण शुद्ध वा अशेषशायी पुरुषोत्तम कहे जाते हैं, एतावता उनके भेद सिद्ध होते हैं । "शुद्धश्च पुरुषोत्तमः" में जो चकार है उसका पुरुषोत्तम शब्दसे भी सम्बन्ध कर दिया जा सकता है जैसे "शुद्धः पुरुषोत्तमश्च" मतलब होता है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदस्य काकाक्षिन्यायेनोभयत्रसम्बन्धात् । तथापि तयोर्वाक्ययोर्विरोध एवेति चेन्न । अमुकलक्षणेनाऽमुकनामा पुरुषोत्तमो भवतीतिविशेषोक्तेः कुत्राप्यभावेन यस्यायस्यामूर्त्तेरुत्तमाङ्गं चारु चक्रत्वं तन्मूर्तिस्तत्तन्नामा पुरुषोत्तमो भवतीति सामान्यतो वाराहोक्तत्वेन च तथा भूतेयमियमिति तन्निर्देशानर्हत्वात् पुरुषोत्तमोऽप्येक एवंत्युक्तमित्यविरोधस्य तत्रोन्नेयत्वात् । ननु तथापि द्विचक्रमूर्त्युद्देशे शेषशायीत्युक्तत्वाद्द्विचक्रयोरेव पुरुषोत्तममूर्त्योर्भेदः सिद्धो न त्रिचक्रकादीनामितिचेन्न ॥

शेषपर्यङ्कशायी पुरुषोत्तममूर्त्तिलक्षण वाक्ये चक्रसंख्याया अनुक्तत्वात्तत्र वाक्यान्तरोक्तानामष्टादशानां षण्णां त्रयाणां द्वयोर्वाचक्रयोर्यथासंभवं सामान्यापवादेनोपसंहर्तव्यत्वादष्टादशादि चक्राणामपि पुरुषोत्तममूर्त्तीनां शेषपर्यङ्कशायित्वसंभवात् । तत्र द्विचक्रशेषशायिपुरुषोत्तममूर्त्त्युद्देशोऽ-

---

भेद शुद्ध और पुरुषोत्तम भी । क्योंकि जैसे कौवे की आँख की गोली कभी इधर कभी उधर काम आने पर लुढ़कती है उसी न्याय से कार्यवश चकार का पुरुषोत्तम पर का सम्बन्ध कर दिया जाता है, न कहिये कि तब भी तो उन दोनों वाक्यों का विरोध होता है, यह भी बिल्कुल नहीं क्योंकि इस लक्षण से इस नाम के पुरुषोत्तम होवे हैं ऐसा विशेष वचन कहीं पर भी नहीं है, किन्तु जिस जिस मूर्ति के शिर पर सुन्दर चक्र हों उन उन की संख्या वही वही नाम के पुरुषोत्तम मानकर होती है ऐसा वराहपुराण में भी कहा गया है इसलिये उन उन लक्षणों की ऐसी ऐसी मूर्ति कहकर विशेष नाम को न बताना अच्छा नहीं अतः सविशेषण भेद प्रतिपादक लक्षणवाक्यसे भिन्नरूप मानकर भेदरूप को बताया गया है । नहीं तो "पुरुषोत्तमोऽप्येक एव" ऐसा एवकार सहित एक शब्द पढ़ने की क्या आवश्यकता रही । इसका मतलब यह है कि विशेषण रहित पुरुषोत्तम एक ही हैं । इसलिए भेद बताने पर लक्षणवाक्य चरितार्थ होते हैं । वास्तव में एक तो है ही हैं अतः कोई विराध नहीं है, ऐसा अनुमान कर लेना चाहिए । यदि कहिये कि द्विचक्र मूर्ति के लक्षणों पर "शेषशायी" ऐसा कहा है इस वास्ते द्विचक्रमूर्ति के ही भेद सिद्ध होते हैं, त्रिचक्रों के नहीं । यह बात भी नहीं है क्योंकि शेषपर्यङ्कशायी पुरुषोत्तम मूर्तियों के लक्षण वाक्य पर चक्र संख्या नहीं बताई गयी है । वहाँ पर अन्य वाक्य से उक्त अट्ठारह छः तीन वा दो चक्रों के यथासम्भव रहते सामान्य वाक्य का विशेष वाक्य से उपसंहार मानकर अट्ठारह चक्र पर्यन्त की पुरुषोत्तम मूर्त्तियों का शेषपर्यङ्कशायित्व होना सम्भव हो सकता है । अतः दोष नहीं है । वहाँ पर जो द्विचक्रमूर्ति का निर्देश किया गया है उसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यासामप्युपलक्षणार्थः। इयांस्तु विशेषः।

तत्र द्वित्रिषट्चक्राणां शेषपर्यङ्कशायित्वस्य गरुडासनत्वादिवच्चिह्नविशेषमात्रत्वेन तासां मूर्त्तीनां पुरुषोत्तम इत्येवसंज्ञा संपद्यते। द्विचक्रादि षट्चक्रान्तानां शेषभोगविशिष्टत्वेसत्यनन्तमूर्तित्वाऽवचनात्।

दशचक्राष्टदशचक्रयोस्त्वनन्तमूर्तित्वघटक शेषपर्यङ्कशायित्वेसति हृषीकेशादि पूर्वसंज्ञकानन्त पुरुषोत्तम इति वा संज्ञा सम्पद्यते। षट्चक्रादूर्ध्वंयावत्संभवचक्रान्तानां शेषभोगविशिष्टत्वेसत्यनन्तमूर्तित्वस्योद्देशवाक्येपूक्तत्वात् इति। अत उद्देशवाक्येषु शेषशायिशब्दध्वनितोऽप्यनन्तमूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तेस्तदुपलक्षणकत्वेनेतरानेकमूर्त्ति विशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तेरप्यवगमादुद्देशवाक्येऽपि शुद्धत्वविशिष्टत्व भेदभिन्नाः पुरुषोत्तममूर्त्तयोपदिष्टाएवेति सूपपन्नमिति।

त्रिचक्रादि अन्य मूर्तियों का भी भाव घुसा हुआ (उपलक्षणार्थ) है।

प्रश्न का भाव यह है कि पुरुषोत्तम जी का भेद क्यों कहा ? उत्तर में कहा कि अनेक विशेषण जुटने पर उपाधिभेद को मानकर भेद निर्देश किया। जैसे किसी ने पण्डित देवदत्त कहा, किसी ने योगी देवदत्त, यद्यपि देवदत्त एक है पर पण्डित कहनेवाला उसके पाण्डित्य के लक्षणों को बतायेगा और योगी कहनेवाला योगी के, वैसे ही यहाँ पर भी विशेषण मात्र से भेद बताकर उसी नाम से जानना है। पुरुषोत्तम मूर्ति तो अभेद्य ही है। यही विशेषता है कि शेषपर्यङ्कशायीतो खास होते नहीं, सिर्फ चक्रों को देखकर लक्षण घटाना है जैसे गरुडासन कहा हो तो वैसा चिह्न का दरकार है न कि गरुड़ जी ही साथ लगे रहते हैं अतः द्वित्रिषट् चक्रों के आधार पर उन मूर्तियोंकी पुरुषोत्तम ऐसी संज्ञा होती है ऐसा कहना ही ठीक है। यह तो नहीं न कहा है कि शेषफणाके साथ द्वि त्रि षट् इत्यादि चक्र हों तो वह "अनन्त" होते हैं। दश चक्र और अट्ठारह चक्रों की हो अनन्तमूर्ति घटक शेषशायी होने पर हृषीकेशपुरुषोत्तम, विश्वम्भर पुरुषोत्तम (अनन्तपुरुषोत्तम इत्यादि) ऐसी संज्ञा भी होती है। छः चक्रसे लेकर जहाँ तक जितने चक्रों का संभव हो सके शेषफणा युक्त होने पर "अनन्त" मूर्तित्व बताने का लक्षण वाक्य है ही है अतः लक्षण वाक्यों पर "शेषशायी" शब्द से अनन्त मूर्ति विशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्ति की ध्वनि तो साफ मालूम पड़ती है पर भी उसे उपलक्षण मात्र मानते हैं इसलिये और कई अन्य मूर्तिविशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्ति का भी बोध होता है। लक्षणवाक्य में भी शुद्धत्व और सविशेषणत्व भेद विशेषण से विभिन्न नाम स्वरूप वाली पुरुषोत्तम मूर्तियों के नाना लक्षण बताये गये हैं। अतः कोई शंका नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्रादौ शुद्धपुरुषोत्तमलक्षणम् । नारदपञ्चरात्रे—

अष्टासु च दिशास्वास्यमूर्ध्वमास्यञ्च यद्भवेत् ।
पुरुषोत्तमो भवेद्देवो भोगमोक्षगुणप्रद इति ॥

एतस्य नवास्यत्वादष्टादशचक्रत्वं ज्ञेयम् । तथा ब्रह्मपुराणेऽपि—

प्राच्यादिष्वष्टकाष्ठासु यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम् ।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥

ग्रन्थान्तरेपि—

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योद्ध्वं दृश्यते मुखम ।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥

पद्मपुराणेऽपि—विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योद्ध्वं दृश्यते मुखम् । भुक्तिमुक्ति प्रदो देवो विज्ञेयः पुरुषोत्तम इति ।

पुराणसंग्रहे—दिक्षुचैव च सर्वासु यस्योद्ध्वं दृश्यते मुखम् । स देवदेवो विज्ञेयः पुराण पुरुषोत्तम इति ॥ एतस्यपञ्चमुखत्वाद्दशचक्रत्वम् ।

शुद्ध पु रुषोत्तम का लक्षण—

नारद पञ्चरात्र पर—

आठों दिशाओं में मुखों के रहते ऊर्ध्व मुख भी हों तो वह भोग और मोक्ष गुणों को देनेवाले भगवान् "पुरुषोत्तम" हैं। इनके नौ मुख हैं, अतः प्रत्येक मुख पर दो चक्र के हिसाब से अट्ठारह चक्र होते हैं।

ब्रह्मपुराण पर भी—

पूर्व आदि आठों दिशाओं में और ऊर्ध्व भागमें भी मुख हों तो उनको भुक्ति मुक्ति फलको देने वाले भगवान् पुरुषोत्तम जानना चाहिये ।

ग्रन्थान्तर में भी—

सभी दिशा और विदिशाओं एवम् ऊर्ध्व भाग में भी मुख दीखते हों तो उनको भुक्तिमुक्ति फल के दाता पुरुषोत्तम जानना चाहिए। पद्मपुराण में भी—अर्थ वही है।

पुराणसंग्रह पर भी—

अर्थ सब वही है केवल पुरुषोत्तम के नाम पर देवदेवपुराण पुरुषोत्तम शब्द आया है। मूल में "दिक्षु चैव च" देखकर "विदिक्षु" ऐसापद न देखकर चार-दिशा और ऊर्ध्व भागके सभी मुखोंको जोड़ कर पञ्चमुख समझते हुए दशचक्र कहा है मगर "चैव च" पर जो चकार की पुनरावृत्ति किया है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि विदिशाओं का भी अभिप्राय है अतः नौमुख और अट्ठारह चक्र जानें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्डपुराणे—

षट्चक्रं वर्तुलाऽऽकारं वनमालासुशोभितम्।
पुरुषोत्तममिति ख्यातमष्टसिद्धिप्रदायकम् ॥ इति।

एतस्य षट्चक्रत्वं स्पष्टमेव। तथा तत्रैव—मध्यचक्रः सुवर्णश्च मस्तके पृथुचक्रकः। पुरुषोत्तमोभवेद्देवः पूजकस्य शुभप्रद इति ॥ एतस्य त्रिचक्रत्वमिति। पुराणसंग्रहे—अतिकृष्णो रक्तरेखो बृहद्वक्रश्च चक्रवान्। क्वचित्कपिलसंयुक्तः स्थूलो वा सूक्ष्म एवच। पुरुषोत्तमः सविज्ञेयो द्वारचक्रेण मण्डितः। पाशांकुशयुतश्चक्रं बाह्यपार्श्वे सुचारुकम्। इति ॥ अत्र पाशांकुशसाहचर्य्याच्चक्रं पूर्ववत् किञ्चिद्रेखात्मकं ग्राह्यम्।

नारदीय पुराणे—खगासनसमारूढो बाणासनशरोपगः। उभे चक्रे प्रदृश्येते सवसौभाग्यदायक इति। अत्र खगो गरुडो, बाणासनं धनुः। एतस्य द्विचक्रत्वं स्पष्टमेव।

पुराणसंग्रहे—अतसीपुष्पसङ्काशो बिन्दुना परिभूषितः।
पुरुषोत्तम उक्तोसौ सर्वसौभाग्यवर्द्धन इति ॥

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि—

षट् चक्रके, गोल, वनमाला से सुशोभित, अष्टसिद्धि के दाता भगवान् पुरुषोत्तम कहलाते हैं। इस मूर्ति पर छः चक्र ही होते हैं।

उसी पर और भी—

मध्य भाग में चक्र के होते हुए मस्तक पर भी मोटे चक्रवाले सुन्दर स्वरूप पुरुषोत्तम देव हैं। वह पूजक के लिए शुभफल देते हैं। यह त्रिचक्रवाले हैं ॥ पुराणसंग्रह पर—अति कृष्ण वर्ण के लाल रेखा और बड़े चक्रवाले चक्री कहीं-कहीं पर कपिल वर्ण के भी सूक्ष्म वा स्थूल स्वरूप के द्वार चक्र से शोभित बाह्यपार्श्व में भी सुन्दर चक्रवाले और पाश एवं अङ्कुशाचिन्हधारी हों तो उनको पुरुषोत्तम कहना चाहिए।

यहाँ पर पाश और अङ्कुश शब्द के साथ चक्र भी आया है अतः उसे भी कुछ रेखाकार जानना चाहिये। नारदीय पुराण पर कहा है कि—

गरुड़ पर विराजमान, धनुष के शर पर अवस्थित प्रत्यक्ष द्विचक्र के भगवान सर्व सौभाग्यदायक होते हैं। खग = गरुड़। बाणासन = धनुष। द्विचक्रमूर्ति।

पुराणसंग्रह पर—

अतसी पुष्प सदृश, बिन्दु से सुशोभित ऐसे भगवान् सभी सौभाग्यवर्द्धक भगवान् पुरुषोत्तम कहे गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णुरहस्ये—पारिजात ध्वजोपेतो वर्त्तुलो वज्रसंयुतः। पुरुषोत्तमः स विज्ञेयः सर्वसौभाग्यदायकः॥ एतं यो भजते मर्त्यः शेषपर्यङ्कशायिनम्। पुत्रपौत्रकलत्राद्यैर्विष्णुलोकं सगच्छतीति ॥ अथ तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तमलक्षणम्। वाराहपुराणे—

अनन्तोमूर्ध्नि चक्राढ्यो ह्यनन्त पुरुषोत्तम इति।

तथा—

यस्यामूर्त्तेरुत्तमाङ्गं चारुचक्रसमन्वितम्।
तत्तन्मूर्त्तिः खगेशान तन्नामापुरुषोत्तम इति॥

अयमर्थः। उक्तवक्ष्यमाणमूर्त्तीनां मध्ये यस्यामूर्त्तेर्मस्तके तत्तल्लक्षणातिरिक्तं चारुचक्रं केशरादिषड्विधचक्रान्तर्गतचक्रं चेद्भवति तदा मत्स्यपुरुषोत्तमः कूर्मपुरुषोत्तम इत्यादयो द्विचक्रादूर्ध्वं सप्तचक्रपर्यन्तं तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयो भवन्ति। तदूर्ध्वं महानारायण तत्पूर्वसंज्ञकान्तादि विशिष्ट पुरुषोत्तममूर्त्तयस्त्रयोदशचक्रपर्यन्तं भवन्ति।

तदूर्ध्वं विश्वम्भरतत्पूर्वसञ्ज्ञकानन्तादिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयश्च-

---

विष्णु रहस्य पर—पारिजात, एवं ध्वजाकार से युक्त, वर्तुल वज्रचिन्हित मूर्तिको पुरुषोत्तम जानिये, वह सभी सौभाग्द के दायक हैं। जो मनुष्य इस शेष पर्यङ्कशायी स्वरूप का भजन करता है वह पुत्र, पौत्र और कलत्र से युक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है। अब तत्तन्मूर्ति विशिष्ट पुरुषोत्तम के लक्षण बताये जायेंगे।

वराहपुराण में—शिर पर चक्रवाले अनन्त हैं, वही अनन्त पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

तथा—

हे गरुड़जी! जिस मूर्ति का शिर हो और वह सुन्दर चक्र से युक्त हो तो उसे उसी मूर्ति के पुरुषोत्तम कहते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त सभी लक्षणों के रहते चक्र-सहित मूर्ति का शिर मत्स्य का सा दीखता हो तो वह मत्स्य पुरुषोत्तम, सचक्र मूर्ति का शिर कूर्म जैसा हो तो वह कूर्म पुरुषोत्तम इत्यादि। एवञ्च दो चक्र से ऊपर सात चक्र पर्यन्त शिर चक्राकार देखकर मत्स्य पुरुषोत्तम, कूर्म पुरुषोत्तम, वराह पुरुषोत्तम इत्यादि तत्तन्नाम सहित की पुरुषोत्तम जी की मूर्तियाँ होती हैं। सात चक्र से ऊपर के महानारायण पुरुषोत्तम होते हैं इत्यादि सविशेषण पुरुषोत्तम जी की मूर्तियाँ तेरह चक्रपर्यन्त की होती हैं॥ इत्यादि॥

तेरह से लेकर चौबीस चक्रपर्यन्त की मूर्तियाँ अनन्तादि नाम विशिष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुर्विंशति चक्रपर्यन्तं भवन्ति। तदूद्र्ध्वं शुद्धानन्तविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयो-यावत्संभव चक्रपर्यन्तं भवन्ति। तासां मध्ये दिङ्मात्रेणोदाहरणम्! "अनन्तोमूर्ध्निचक्राढ्यो ह्यनन्त पुरुषोत्तम इति। इति पुरुषोत्तममूर्त्तीनां सभेदलक्षणानि।

अथाऽधोक्षजलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

अतिकृष्णो रक्तरेखो वृत्तदेहः सुचक्रकः।
किञ्चित्कपिलसंयुक्तः स्थूलो वा सूक्ष्म एव वा॥

अधोक्षज इतिख्यातः पूजकस्य शुभप्रद इति।

वाराहपुराणे—

पार्श्वे चक्रद्वयं सूक्ष्ममधोवदनसंयुतः।
अधोऽक्षजस्तु विज्ञेयो यतिभिः पूजितः सदा॥ इति।

अयमेकः सर्वाश्रमपूज्य इतरस्तु यतिपूज्यो द्विचक्रः स्पष्ट एव। इत्यधोक्षजलक्षणम्।

अथ नृसिंहस्य मूर्त्तिभेदलक्षणानि

तत्रादौ भेदाः, पुराणसंग्रहे—

तेषां शुद्धो भवेदाद्यो लक्ष्मीयुक्तस्ततः परः। बालश्च कपिलो योगः

पुरुषोत्तम सञ्ज्ञक होती हैं। उससे ऊपर यावत्संभवचक्रपर्यन्त की मूर्तियाँ भी शुद्ध अनन्त इत्यादि सविशेषण अनन्तादि सञ्ज्ञक होती हैं। उन मूर्तियों के उदाहरणों का यहाँ पर दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। पुरुषोत्तममूर्त्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए।

अधोऽक्षज का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि पूजन के लिये शुभफल के देने वाले अधोऽक्षज जी अति कृष्णवर्ण के, लाल रेखा, गोलाकार रूप और सुन्दर चक्रवाले कुछ कपिलवर्ण से युक्त सूक्ष्म वा मोटे भी होते हैं। इति।

वराह पुराण पर—

पार्श्व में दो, चक्रवाले सूक्ष्म स्वरूप के अधोमुख अधोऽक्षज कहलाते हैं। वह संन्यासियों के सदा पूज्य हैं। पूर्वोक्त लक्षण के सर्वाश्रमी के पूज्य हैं। सिर्फ यह दो चक्रवाले यति पूज्य हैं। अधोऽक्षज लक्षणसमाप्त॥

अब नृसिंह के मूर्ति भेद और उनके लक्षण कहे जायेंगे।

पहले पुराण संग्रह के अनुसार उनके भेद बताये जा रहे हैं। नृसिंहजी के इनमें भेद इतने हैं जैसे—शुद्ध नृसिंह १ लक्ष्मी नृसिंह २ बाल नृसिंह ३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वतोमुख एव च। पातालाकाशकौ विद्युदधोमुखविभीषणौ ॥ हारज्वाला कुक्षिपूर्वाविवृतास्यमहाद्यकौ। अघोर पूर्वकाश्चैते नृसिंहाः परिकीर्तिताः। तेषां दशावतारेषु राक्षसान्तकविदारणौ। उक्तौ चैवावशिष्टानां लक्षणानि-क्रमाद् ब्रुवे। तत्र शुद्धनृसिंहलक्षणम्। पुराणसंग्रहे—

नरसिंहो महादेवः पृथुचक्रः सुदंष्ट्रकः।
पूज्यते ब्रह्चर्येण नान्यथा पूजितोभवेदिति ॥ ग्रन्थान्तरे—

पीतवर्णस्तु देवानां रक्तभास्वरलोचनः। नारसिंहो भवेद्देवो मोक्षदः पूजितोभवेदिति ॥

पद्मपुराणे—यस्य दीर्घमुखं पूर्वकथितैर्लक्षणैर्युतः। रेखाश्च केशराकारा नारसिंहो मतो हिस इति ॥ गरुडपुराणे—

वर्तुलं स्थूलमत्यन्तं स्पष्टचक्रसमन्वितम्।
ह्रस्वमुन्नतमुच्चैर्वा दीर्घास्यमतिगह्वरम ॥

स्फुरद्रेखावलियुतं नाभिस्तस्योन्नता भवेत्। चक्रस्योभयपार्श्वेतु स्नुही-पुष्पा कृतिर्भवेत्। केशभारस्तु वैवर्ण्यं दृश्यते चक्रपार्श्वत इति। तथा—

कपिल नृसिंह ४ योग नृसिंह ५ सर्वतोमुख नृसिंह ६ पाताल नृसिंह ७ आकाश नृसिंह ८ विद्युन्नृसिंह ९ अधोमुख नृसिंह १० विभीषण नृसिंह ११ हार नृसिंह १२ ज्वाला नृसिंह १३ कुक्षि नृसिंह १४ विवृताऽऽस्य नृसिंह १५ महा नृसिंह १६ और अघोर नृसिंह १७ ॥

इनमें से दशावतार प्रकरण में राक्षसान्तक और विदारण नाम के दो नृसिंह के लक्षण कह चुके हैं। अब बचे सबके लक्षणों को क्रमशः बतायेंगे ॥

उनमें से पहले पुराण संग्रह के अनुसार शुद्ध नृसिंह जी का लक्षण—नरसिंहजी महान् देव हैं, स्थूल चक्र, और सुन्दर दाँत (दहाड़े) वाले होते हैं। ब्रह्मचर्य में रहकर ही उनकी पूजा की जाती है अन्यथा पूजा नहीं हो सकती है।

ग्रन्थान्तर में—

पीतवर्ण होकर लाल कान्ति के नेत्रवाले पूजा से मोक्ष के दाता भगवान् देवदेव नृसिंह होते हैं। पद्मपुराण में—जो पूर्वोक्त लक्षणों से घटित हों मुँह कुछ दीर्घ और केशराकार रेखाएँ भी हों तो वह खास नारसिंहजी हैं। गरुड़ पुराण पर—गोलाकार, अति स्थूल, स्पष्ट चक्र युक्त, छोटा वा बड़ा शरीर का उच्च शरीर, दीर्घ मुख, अति गम्भीर चमकती हुई रेखावली से युक्त, उच्च नाभि चक्र के दोनों भाग में सेहुँड़ के फूल का जैसा आकार, जटाओं का भार और चक्र के पास में विवर्णता इत्यादि जिनके लक्षण हों, वह भगवान नृसिंहदेव हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नृसिंह पीतवर्णस्तु महाचक्रो महागुरुः । यतिः सम्पूजयेदेनं गृहस्थः परिवर्जयेदिति । अयं सामान्यवाक्याद्विचक्र एव ।

अथ लक्ष्मीनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--

वामभागेस्थिते चक्रे वनमालाविभूषितः ।
लक्ष्मीनृसिंहो विज्ञेयो भुक्तिमुक्ति फलप्रद इति ॥

पद्मपुराणे—वामपार्श्वे स्थिते चक्रे कृष्णवर्णे सबिन्दुके । लक्ष्मीनृसिंहो-विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ।

नृसिंहपुराणे—

वामपार्श्वे स्थिते चक्रे कृष्णवर्णः स बिन्दुकः ।
लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥

अन्नपानमहावृद्धि सौभाग्यारोग्यवर्द्धन इति । ब्रह्मपुराणे—नरसिंहस्त्रिविन्दुःस्यात्कपिलः पञ्चविन्दुकः । वामाश्रिते पुष्कले तु लक्ष्मीनरहरिस्मृतः । इति । कपिलनृसिंहलक्षणविशिष्टोऽयं लक्ष्मीनृसिंह इत्यर्थः ।

तथा:—

नृसिंहदेव पीले वर्ण के, महास्थूल और महान् चक्रवाले होते हैं । इनकी पूजा संन्यासी करें, गृहस्थ दूर ही से छोड़ दें । सामान्यवाक्य से यह भी द्विचक्र हैं ।

लक्ष्मी नृसिंह का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—वामभाग में चक्र के रहते वनमाला से भी भूषित हों तो उनको भुक्तिमुक्ति के देने वाले लक्ष्मीनृसिंह जी जानना चाहिये ।

पद्मपुराण पर—बायीं ओर बिन्दु के साथ काला वर्ण का चक्र हो तो उन्हें भुक्तिमुक्तिफलदायक लक्ष्मी नृसिंह जानना चाहिये ।

नृसिंह पुराण में—

वामपार्श्व में बिन्दु सहित काला वर्ण का चक्र हो तो वह भुक्तिमुक्ति के देनेवाले लक्ष्मीनृसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं और वह अन्न पान सौभाग्य और आरोग्य को खूब बढ़ाते हैं ।

ब्रह्मपुराण पर कहा है कि—नरसिंहदेव तीन बिन्दु से युक्त होते हैं। यदि कपिलवर्ण के हों तो पाँच बिन्दु से युक्त भी होते हैं, वामभाग श्रेष्ठ होता है । उन्हें लक्ष्मी नृसिंह समझा गया है ।

इनको कपिलनृसिंह विशिष्ट लक्ष्मीनृसिंह जानना चाहिये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा—द्विचक्रं च बृहद्वक्त्रं कपिलं कनकप्रभम्। लक्ष्मीनृसिंह तन्नाम्ना ब्रह्मचारिभिरर्चितम्। इति। मत्स्यपुराणे—

द्वारद्वये चतुश्चक्रं विकरालमुखन्तथा।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं यतिपूज्यमकर्कशम्।
कर्कशं तु वनस्थानां गृहीणां न सुखप्रदम्॥ इति।

अत्र विकरालमुखत्वस्य विहितत्वात्तन्निषेधस्तु न प्रवर्तते स्ववेष्टत-तुरीयांशमित्यादि वक्ष्यमाणप्रकारकविकरालमुखमकर्कश कोमलाऽऽकारञ्चे-ल्लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयमित्थंभूतमिमंगृहीणामपिपूज्यमित्यध्याहारः। कर्कशं तु यतिपूज्यं वनस्थानामपि पूज्यं गृहीणां तु न सुखप्रदमित्यन्वयः। सर्वत्रद्वितीयान्तानां तत्तत्पुराणादिगत शालग्राम प्रकरणान्तर्गतक्रियापदा-न्वयान्नाऽनुपपत्तिः लक्ष्मीनृसिंहः कृष्णवर्ण एव गृहस्थपूज्यो नेतरः। द्विचक्रश्चतुश्चक्रश्चाऽयं स्पष्ट एव।

तथा—द्विचक्र, विशालवदन, कपिलवर्ण और सुवर्णकान्ति हो तो उस मूर्ति को ब्रह्मचारी के पूज्य लक्ष्मीनृसिंह कहना चाहिये।

मत्स्य पुराण में—दोनों द्वार में चार चक्र हों, विकराल मुख हो, और कर्कश मूर्ति न हो तो उनको संन्यासियों के पूज्य लक्ष्मी नृसिंह जानना चाहिये।

कर्कश मूर्ति वानप्रस्थियों के लिये अच्छी होती है, गृहस्थों के लिये सुखदायक नहीं होती है। यहाँ पर विकराल मुख मूर्ति का विधान किया है अतः कर्कश अंश का निषेध नहीं लग सकता है। "स्ववेष्टन तुरीयांशम्" इत्यादि निम्नलिखित प्रकार से यदि विकराल याने अकर्कशको मलाकार की मूर्ति हो तो उसे लक्ष्मीनृसिंह जानना चाहिये, इस लक्षण की ऐसी मूर्ति गृहस्थियों की अपूज्य है। ऐसा ऊपर से जानना चाहिये। अर्थात् इसका अन्वय ऐसा होता है कि कर्कश मूर्ति गृहस्थ के सिवा यति और वानप्रस्थी दोनों की पूज्य है। सर्वत्र "द्वितीया विभक्त्यन्त" पदों के मिलने पर यदि नाम और लिङ्ग से ठीक अर्थ नहीं बैठता हो तो उनउन पुराण में पूर्वापरोक्त "आहुः, प्रचक्षते" इत्यादि, शालग्राम प्रकरण के क्रियापदों का सम्बन्ध समझना चाहिये अतः कोई दोष नहीं है। जैसे स्कन्द में "कूर्मञ्च वर्तुलाकारम्" इत्यादि कहा है वहाँ पर आहुः इत्यादि जानना चाहिये, इस बात को उनउन स्थलों में पहले ही न कह करके मूल में सिंहावलोकनन्याय से यहाँ पर कहा है। कृष्णवर्ण लक्ष्मीनृसिंह ही गृहस्थ पूज्य हैं अन्य नहीं। यह द्विचक्र वा चतुश्चक्र होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वालनृसिंहलक्षणम्

पद्मपुराणे—

सूक्ष्मरन्ध्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाभिरन्वितम् ।
तद्वालनरसिंहाख्यं यतिसंसार मोचनमिति ॥

अस्य शुद्धनृसिंहलक्षणोक्त पीतवर्ण उपसंहर्तव्यः । द्विचक्रत्वं तु स्पष्टमेव ।

अथ कपिलनृसिंहलक्षणम्

अग्निपुराणे—नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात्पञ्चविन्दुयुगिति ।

पद्मपुराणे—नृसिंहः कपिलोज्ञेयः स्थूलवक्त्रोग्रदंष्ट्रकः । त्रिबिन्दुः पञ्च-बिन्दुर्वा ब्रह्मचर्येण पूजितः । ददाति वाञ्छितं नृणामघौघस्याशुनाशकः ॥ अन्यथा जायते क्लेशो नात्र कार्याविचारणेति ॥ वैखानससंहितायाम्—

कपिलाख्यो नृसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः ।
ब्रह्मचार्यधिकारोऽस्ति नान्यथा पूजनं भवेदिति ॥

अयमपि सामान्यवाक्याद्विचक्रएव ।

वालनृसिंह का लक्षण—

पद्मपुराण में कहा है कि—सूक्ष्म छिद्र के वनमाला से युक्त द्विचक्रवाले संन्यासियों के लिये मोक्ष के दाता भगवान् बालनृसिंह होते हैं । इनका भी शुद्धवत् पीतवर्ण होता है ऐसा पूर्वोक्त उपसंहार से जानना चाहिये । यह द्विचक्र हैं ।

कपिलनृसिंह का लक्षण—

अग्नि पुराण में—नृसिंह कपिल, और स्थूलचक्र के, पाँच बिन्दु वाले होते हैं ।

पद्म पुराण में—कपिलवर्ण, स्थूल चक्र, उग्रदंष्ट्रा एवं त्रि वा पाँच बिन्दुवाले और महान पापराशि के विनाशक भगवान् नृसिंह देव ब्रह्मचर्य में रहकर पूजित हों वो मनुष्या के लिये वाञ्छित फल देते हैं । अन्यथा क्लेश होता है । इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

वैखानस संहिता पर—

कपिल नृसिंह स्थूल चक्र के खूब सुन्दर होते हैं, उनकी पूजा में ब्रह्मचारी मात्र का अधिकार है अन्यथा उनकी पूजा नहीं होती है । यह भी सामान्य वाक्य से द्विचक्र ही हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ योगनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—स्थूलचक्रद्वयं मध्ये गुडलाक्षासवर्णकः। द्वारोपरि तथा रेखा नृसिंहो योग सञ्ज्ञक इति। विष्णुरहस्ये—

सव्यभागे स्थिते पद्मे दृश्यते हेमबिन्दुकम्।
योगो नृसिंहो देवेशो गोत्रकीर्त्तिप्रवर्द्धन इति॥

"गोत्रकीर्तिप्रवर्द्धनः" इतिकथनाद् गृहस्थानामप्ययं पूज्यः स्पष्ट एव द्विचक्रश्च।

ब्रह्माण्डपुराणे—

सप्तचक्रं बहुमुखं समन्तात्स्वर्णभूषितम्।
सर्वतोमुखमाख्यातं बहुवर्णन्तु मोक्षदमिति॥ तथा—

सप्तचक्रः समाख्यातो नृसिंहः सर्वतोमुख इति। अयन्तु सप्तचक्रः स्पष्ट एव।

अथ पातालनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—तृतीयचक्रादारभ्य पार्श्वतो दशचक्रकः। पूर्वोक्त चिन्ह हीनश्च बहुरूपधरो भवेत्। पातालनरसिंहोऽसौ यतीनां मोक्षदायक इति॥

योग नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्म पुराण पर—मध्यभाग में दो स्थूल चक्र हो, गुड़ वा लाक्षाके समान वर्ण हो तथा द्वारोपरि रेखा भी हो तो उनको बालनृसिंह कहते हैं।

विष्णु रहस्य पर—

बायें भाग में पद्म के रहते सुवर्ण की बुन्दी भी दीखती हो तो वह गोत्र और कीर्ति के बढ़ाने वाले देवेश बाल नृसिंह कहे जाते हैं।

"गोत्रकीर्तिप्रवर्द्धनः" ऐसा कहा है इसलिये गृहस्थ के भी यह पूज्य हैं। द्विचक्र हैं।

सर्वतोमुख नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—सात चक्र के बहुमुख चारों ओर सुनौले रङ्ग से भूषित बहुवर्ण के मोक्षदायक सर्वतोमुख नृसिंह कहलाते हैं। तथा सात चक्र के नृसिंहदेव सर्वतोमुख कहलाते हैं। यह सात चक्र के हैं।

पाताल नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह में—पार्श्वभाग में तीन से दशचक्रपर्यन्त के पूर्वोक्त चिन्ह रहित बहुव रूपधारी यतियों को मोक्ष के देनेवाले यह पाताल नृसिंह कहलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्डपुराणे—

बृहच्चक्रं बृहद्वारं बहुवर्णमनोहरम् ।
तं पातालनृसिंहाख्यं भिक्षूणाममृतप्रदमिति ॥

तथा—बहुच्छिद्रं भिन्नवक्त्रं सुवर्णकनकान्वितम् । पातालनरसिंहाख्यं-वनवासिभिरर्चितमिति ॥ अयं मुखे द्विचक्रतृतीयचक्रादारभ्याष्टचक्राणि पार्श्वत एवं दशचक्र इत्यर्थः ।

अथाऽऽकाशनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—अस्याष्ट चक्रमध्यस्थमल्पभारं महोदरम् ।
आकाशनरसिंहाख्यं वनवासिभिरर्चितम् ॥ इति ।

अस्याप्यनुक्तवर्णत्वात्सामान्य नृसिंहलक्षणोक्तपीतवर्णोवा कापिलं नारसिंहंत्वित्युक्तं कपिलवर्णो वोपसंहर्तव्यः । एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् सामान्यवाक्यादेव द्विचक्रत्वमपि ।

अथ विद्युज्जिह्व नृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—द्विचक्रं द्विमुखं स्थूलं दूर्वाभं चोन्नतं शिरः ।
दारिद्र्यफलदः पुंसां विद्युज्जिह्वनृसिंहक इति ॥

ब्रह्माण्ड पुराण में—

बृहत् चक्र, बृहद् द्वार, बहुवर्ण की मूर्ति को पाताल नृसिंह कहते है । वह संन्यासियों के लिये मोक्ष के दाता होते हैं ।

तथा—बहुत छिद्र हों, भिन्न मुख हो, सुन्दर सुवर्ण से युक्त हो तो उस मूर्ति को वनवासियों से पूजित होने लायक पाताल नृसिंह जानना चाहिये । इनके मुँह पर दो चक्र होते हैं । तीन से आठ तक बगल में एवं यह दशचक्र के होते हैं ।

आकाश नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि—वनवासियों के पूज्य आकाश नृसिंहके मध्य भाग में आठ चक्र होते हैं । वजन कम ही रहता है, पेट बड़ा दीखता है । इत्यादि ।

इस मूर्ति का भी कोई वर्ण नहीं बताया गया है अतः सामान्य नृसिंह लक्षणोक्त पीतवर्ण वा "कपिलं नारसिंहं तु" इस लक्षण से कपिल वर्ण पर उपसंहार करना चाहिये । इसी तरह आगे भी जानना चाहिये ।/सामान्य वाक्य से द्विचक्रत्व भी जानना चाहिये ।

विद्युज्जिह्व नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर—द्विचक्र, द्विमुख, स्थूल, दूर्वावर्ण और उच्च शिरवाले विद्युजिह्व नृसिंह हैं । उनकी पूजा से मनुष्यों को दरिद्र होना पड़ता है । यह भी द्विचक्र हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयमपिपूर्ववद्द्विचक्र एव। अथाऽधोमुखनृसिंहलक्षणम् ब्रह्माण्ड-पुराणे—पुरःपार्श्वे च पृष्ठे च चक्रैरभ्युपशोभितम। अधोमुख इतिख्यात-मर्चकानां विमुक्तिदमिति। अयन्त्वधोमुखः सन् त्रिचक्रः स्पष्ट एव।

अथ विभीषण नृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

दीर्घाकारं दीर्घवक्त्रं झषकास्यं बृहत्तनुम्।
विभीषणमितिप्रोक्तं दीर्घदुःखफलप्रदमिति॥

झषकास्यं मत्स्यमुखाऽऽकारमित्यर्थः। अयन्तु सामान्यवाक्याद्द्विचक्र एव।

अथ हारनृसिंहलक्षणम्।

पुराणसंग्रहे—

सूक्ष्मरन्ध्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाविभूषितम्।
तद्धारनरसिंहाख्य नृणां संसारमोचकम्॥ इति।

अयन्तु स्पष्टएव द्विचक्रः।

अधोमुख नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—आगे, पीछे और बगल पर भी, चक्रों से खूब शोभित मूर्ति का नाम अधोमुख नृसिंह है, पूजकों को मुक्ति मिलती है। अधोमुख नृसिंह जी अधोमुख हैं अतः त्रिचक्र हैं। (सम्भव है कि पञ्चचक्र भी होते हैं क्योंकि दो चक्र तो पूर्ववत् सिद्ध हैं, और तीन चक्र भी लक्षण पर बतये गये हैं)।

विभीषण नृसिंह के लक्षण—

पुराण संग्रह पर—

दीर्घ आकार के दीर्घचक्र और मत्स्यमुख, विशाल शरीर वाले विभीषण नृसिंह कहलाते हैं, पूजा से दीर्घ काल तक दुःख देते हैं। झषक माने मछली वा मत्स्य। सामान्य० द्विचक्र।

हार नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह में कहा है कि सूक्ष्म छिद्र के, द्विचक्र संपन्न, वनमाला से विभूषित हार नृसिंहजी कहलाते हैं। वह मनुष्यों को संसार से मुक्त कर देने वाले हैं। इनको भी स्पष्ट द्विचक्र के जानिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ ज्वाला नृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे--

सूक्ष्मचक्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाविभूषितम् ।
तच्च ज्वालानृसिंहाख्यं नृणां संसारमोचकम् ॥ इति

अयमपि स्पष्टद्विचक्रः । अत्र बाल हार ज्वाला नृसिंहानामीषल्लक्षणभेदः ।

अथ कुक्षिनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--अस्पष्टचक्रमल्पास्यमल्पभारं महोदरम् । तत् कुक्षि नारसिंहाख्यं वनवासिभिरर्चितमिति । अयन्तु सामान्यवाक्याद्विचक्र एव ।

अथ विवृतास्य नृसिंहलक्षणम्

ह्माण्डपुराणे--

विवृतास्यं वामचक्रं वर्तुलं कपिलप्रभम् ।
नारसिंहं गृहस्थानां भीतिदं विन्दुभिर्वृतम् ॥ इति ।

अयमपि पूर्ववद्द्विचक्र एव ।

ज्वाला नृ सह के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर--

सूक्ष्म चक्र के होते हुए द्विचक्र के वनमाला से शोभित हों तो वह मनुष्यों को संसार से छुटाने वाले ज्वाला नृसिंह कहलाते हैं ।

इनका स्वरूप भी द्विचक्र का ही है क्योंकि श्लोक ही पर पाठ आया है । बस, यही जानिये कि बाल, हार, ज्वाला इत्यादि नृसिंहों का थोड़ा मात्र लक्षण भेद है ।

कुक्षि नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—अस्पष्ट चक्र, छोटे मुँह और अल्प भार के महान् उदर वाले कुक्षि नृसिंह कहलाते हैं । वानप्रस्थों को ही इनकी पूजा करनी चाहिये । यह भी द्विचक्र हैं ॥

विवृतास्य नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्म पुराण में कहा है कि—जिस मूर्ति का मुख फटा है, चक्र बायीं ओर है, आकार गोल है, प्रभा कपिल वर्ण की है और विन्दु भी दीखती है तो उसे गृहस्थों को भय दिलाने वाले विवृतास्य नृसिंह जानना चाहिये । यह पूर्ववत् द्विचक्र हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ महान्नृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—भयङ्करमुखश्चैव विकटस्ताम्रवर्णकः। महान्नृसिंहो देवोऽपि पूजितो मुक्तिदायक इति। अयमपि पूर्ववद् द्विचक्र एव।

अथाऽघोरनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—दंष्ट्राकरालवदनं बृहच्चक्रसमन्वितम्। अघोराख्यंनारसिहं यतीनां मोक्षदायकम्। इति। अयमपि पूर्ववद्द्विचक्र एव। अत्र लक्ष्मी नृसिंहयोगनृसिंहव्यतिरिक्ता नृसिंहमूर्त्तयः सर्वा अप्यगृहस्थ पूज्या इति ज्ञेयम्। तासां मोक्षैकफलदातृत्वाद्गृहस्थानां विशिष्य प्रतिषिद्धत्वाच्चेति। इति सभेद नारसिंहमूर्त्तिलक्षणानि।

अथाऽच्युतलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—चतुर्विलोह्यष्टचक्रैर्वामदक्षिणपार्श्वगैः ।
अधिष्ठितोमुखेप्येकं कुण्डलद्वयशोभितः॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गबाणकौमोदकीधरः। भूषणध्वजपुष्पैश्च छत्रवज्राङ्कुशैर्वृतः॥ सोऽच्युतः कथितो नाम्ना दुर्लभस्तपसाविनेति। पुराणसंग्रहे—

महा नृसिंह के लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—

लाल वर्ण के, विकट स्वरूप, भयङ्कर मुखवाले महा नृसिंह देव हैं। पूजा से मुक्ति को देते हैं। पूर्ववत् द्विचक्र हैं॥

अघोरनृसिंहकालक्षण—

पुराणसंग्रहपर—

लम्बे दात से अतिभयङ्कर है वदन जिनके ऐसे विशालचक्रवाले अघोरनृसिंह हैं, संन्यासियों के लिए मोक्ष दायक होते हैं। यह भी द्विचक्र के ही होते है। यहाँ पर लक्ष्मी नृसिंह और योग नृसिंह को छोड़कर सभी नृसिंह की मूर्तियाँ गृहस्थ के लिये पूज्य नहीं होती हैं, ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि ये सब मोक्षफल को मात्र देती हैं। विशेषतः गृहस्थों के लिये निषेध वचन भी हैं।

नारसिंह मूर्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए, अब अच्युत के लक्षण बताये जाते हैं।

ब्रह्मपुराण में—चारछिद्र के वाम, दक्षिण और पार्श्व भाग में आठ चक्रों से युक्त एवं मुख पर भी एक चक्राङ्कित और दोनों तर्फ कुण्डलसे शोभित शंख, चक्र, गदा, धनुष, बाण, और कौमोदकी के धारण किये, भूषण, ध्वज, पुष्प, छत्र, वज्र, अङ्कुश इत्यादियों से वेष्टित हो तो वह भगवान अच्युत कहलाते हैं, बिना तपश्चर्या से उनका मिलना दुर्लभ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहिश्चक्रसमायुक्तमन्तश्चक्रद्वयान्वितम् ।
देवं तमच्युतं ज्ञेयं सूक्ष्मरन्ध्रं सुशीतलम् ॥ इति ।

तथा—ऊर्ध्वमूलमधोहीनं श्यामं च बहुलं मुखम् । अच्युतं नामदेवेशं द्वयोर्लोकप्रदायकमिति ॥ वाराहपुराणे—अच्युतो मधुवर्णाभो भास्वच्चक्रोऽतिशोभनः । पार्श्वे बिन्दुसमायुक्तो नैष्ठिकैरर्चितोभवेदिति ॥

अयं नवचक्रस्त्रिचक्रश्च स्पष्ट एव । इत्यच्युत लक्षणम् ।

अथ जनार्दनलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—श्यामं स्थूलं महास्निग्धं मध्यचक्रं सुशोभनम् । देवं जनार्दनं नाम महालक्ष्मीप्रदायकमिति ॥ ब्रह्मपुराणे—

द्वारद्वये चतुश्चक्रो जनार्दन इहोच्यते ।
चक्रद्वयं मध्यगतं चक्रद्वयं च पृष्ठत ॥ इति

ब्रह्मपुराणे—पूर्वभागैकवदनः पश्चादेकास्यसंयुतः । जनार्दनश्चतुश्चक्रः श्रीप्रदो रिपुनाशन इति ॥

पुराण संग्रह पर—

बाहरी भाग के चक्रके साथ साथ फिर भी दो चक्र हों तथा—सूक्ष्म छिद्रके, सुशीतल स्वरूप हों तो उन देव को अच्युत कहते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

तथा—ऊर्ध्वभाग में मूल हो, अधोभाग में न हो, श्यामवर्ण की मूर्ति हो, ज्यादे मुख हों तो उनको देवदेव "अच्युत" जानना चाहिये । उनकी पूजासे दोनों लोक सुधर जाते हैं ॥

वराह पुराणमें—अच्युत जी मधुवर्ण के, चमकते चक्रवाले खूब सुन्दर पार्श्व भाग में बिन्दु युक्त होते हैं । नैष्ठिक लोग इनकी पूजा करें ॥

यह लक्षणानुसार नौ और तीन चक्रके भी होते हैं ।

अच्युतजी का लक्षण समाप्त हुआ ।

जनार्दनजी का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार—

सावले, खूब चिकने मध्य चक्रवाले, सुन्दर जनार्दन नामकेँ देव हैं । यह महान् ऐश्वर्य के दाता हैं ।

ब्रह्मपुराण में—दोनों द्वार पर चार चक्र हों अर्थात् दो चक्र तो मध्यभाग में हों और दो पृष्ठ भाग में तो वह जनार्दन कहे जाते हैं ।

तथा—पूर्व की ओर एक मुख हो, पश्चिम की ओर भी एक ही हो और चार चक्र से युक्त हों वह श्रीप्रदायक, शत्रुविनाशकारी जनार्दन कहलाते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुराणसङ्ग्रहे—जनार्दनं विजानीयाद्वनमालाविभूषितम् । ऊर्ध्वाधो द्वे समे वक्त्रे सूक्ष्मवक्त्रैः सुचिह्नितः ॥ व्यूहक्षेत्रसमुत्पन्नश्चतुश्चक्री जनार्दन इति । पद्मपुराणे—द्वारद्वये चतुश्चक्रः समद्वारविभूषितः । जनार्दनः स विज्ञेयः पुत्रलाभं प्रयच्छतीति ॥ तथा शंखचक्राब्जमालाङ्कोनीलः स्थूलाकृतिः शुभः । जनार्दन इति ख्यातो हिमांशुपरिशीतल इति । अयं तु वदनद्वये स्पष्ट एव चतुश्चक्रः ।

इति जनार्दनलक्षणम् ।

अथोपेन्द्रलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

उपेन्द्रो मणिवर्णाभो ह्रस्वचक्रोऽतिशोभनः ।
श्यामलः कोमलाभश्च वक्त्रपार्श्वे सुचक्रयुगिति ॥
शंखचक्राब्जमालाङ्को नीलस्थूलाकृतिः शुभः ।
स पेन्द्र इतिख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥ स्कान्दे—

उपेन्द्र इन्द्रनीलाभश्छत्राकारोमहाबलः । समचक्रः समाङ्गश्च पार्श्वे

पुराण संग्रह पर—

नीचे ऊपर दोनों ओर समान मुख हों, सूक्ष्म मुखों से चिन्हित एवं व्यूह क्षेत्र पर समुत्पन्न चतुश्चक्री हों तो वह जनार्दन हैं ।

पद्मपुराण में—

दोनों द्वार में चार चक्र हों, समान द्वार (मुख) से सुन्दर हों तो वह जनार्दनजी हैं, पुत्रलाभ को देते हैं ।

तथा—शङ्ख, चक्र, कमल और वनमाला के धारण किये स्थूलआकार के शुभ नील स्वरूप जनार्दन कहलाते हैं । वह चन्द्रमाके सदृश शीतल होते हैं । यह मूर्ति दोनों मुँह पर कुल चार चक्रवाली होती है ।

जनार्दनजीका लक्षण समाप्त हुआ ।

उपेन्द्रजी का लक्षण—

उपेन्द्रजी मणिसदृश कान्तिमान् , छोटे चक्र के एवं मुखके पास सुन्दर चक्र सम्पन्न कोमल छबिवाले साँवले अतिसुन्दर होते हैं । इति ।

तथा—

शङ्ख, चक्र, कमल और वनमाला के चिन्ह वाले शुभ नील वर्ण के स्थूलाकार हों तो वह भुक्ति मुक्ति के दाता उपेन्द्र कहलाते हैं ।

स्कान्द पर—

उपेन्द्रजी इन्द्रनील के सदृश चमकीले छत्राऽऽकार के महान् बलिष्ठ, समान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेखात्रयान्वित इति। अयं सामान्यवचनाद्द्विचक्र एव। इत्युपेन्द्रलक्षणम्॥

अथ हरिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—अल्पद्वारसमोपेता हरिमूर्त्तिरुदाहृतेति। ब्रह्मपुराणे—ऊर्द्ध्वमुखं विजानीयाद्धरितं हरिरूपिणम्। काममोक्षप्रदं चैव अर्थदं च विशेषतः। तथा—ऊर्ध्वमुखं विजानीयाज्जपाभं वर्त्तुलं शुभम्। अधोबिन्दुसमायुक्तं सर्वकामार्थसाधकमिति॥ विष्णुरहस्ये—अतसीपुष्पसङ्काशा बिन्दुवज्रसमन्विता। पारिजातध्वजोपेता वर्तुला चातिशोभना॥

प्रदक्षिणावर्त्तयुता वनमालाविभूषिता। सा शिला हरिसंज्ञास्याद्धनधान्यसुखप्रदेति॥ पुराणसंग्रहे—श्यामलं कोमलं स्वल्पं द्वारं पार्श्वे सुचक्रकम्। हरिमेनं विजानीयात्सर्वपापप्रणाशनमिति॥ अत्रापिपूर्ववद् द्विचक्रत्वमेव।

गरुडपुराणे—

दूर्वामरकताभा च नाभिचक्रा तथोन्नता।
हरिमूर्त्तिरितिख्याता शंखमुद्रासमन्वितेति॥

अत्र नाभिचक्रत्वकथनात्पूर्ववद् त्रिचक्रत्वम्। इतिहरेर्लक्षणम्।

चन्द्रके समान ही अवयववाले पार्श्वमें तीन रेखाओंसे युक्त होते हैं।

यह भी द्विचक्र की मूर्ति होती है। उपेन्द्रका लक्षण समाप्त हुआ।

ब्रह्माण्डपुराण के मुताबिक हरिका लक्षण—

समान सूक्ष्म द्वार से युक्त हो तो हरिमूर्ति कही गयी है।

ब्रह्मपुराण पर—हरिभगवान् हरितवर्ण के ऊर्ध्वमुख होते हैं। वह कामनाके अनुसार फल वा मोक्षके दाता विशेषकरके धनदायक भी होते हैं।

तथा—जवाकुसुम के सदृश, ऊर्ध्वमुख, शुभ, गोलाकार, अधोभागमें बिन्दु से युक्त सर्व कामार्थ के साधक भगवान् हरि होते हैं। विष्णु रहस्य पर—तिस्सी के फूल सदृश कान्तिवाली, बिन्दु और वज्रसे युक्त, पारिजात और ध्वजाकार-चिन्ह के साथ प्रदक्षिणावर्तयुक्त, वनमाला से शोभित जो शिला है—उसे धन-धान्य और सन्तान को देनेवाली "हरि" नामकी जानना चाहिये।

पुराणसंग्रह पर—श्यामवर्ण के कोमल अत्यल्पद्वारयुक्त और पार्श्व भाग में सुन्दर चक्र वाले हों तो इनको सभी पाप के नाशक हरिभगवान जाने। पूर्ववत् द्विचक्र०॥

गरुड पुराणमें—

दूब वा पन्ना के सदृश कान्तिवाली नाभी पर चक्राकार, शंखमुद्रा से युक्त एवं उन्नत हो तो वह शिला हरिमूर्ति कहलाती है।

इस मूर्ति की नाभी पर भी चक्र बताया है अतः इसे तीन चक्र की जाननी चाहिये। हरि लक्षण समाप्त॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ कृष्णस्य समूर्त्तिभेदलक्षणानि

तत्रादौ भेदाः पुराणसंग्रहे—

कृष्णः सबालो गोपालो गोवर्द्धनधरोपि च ।
त्रैलोक्यमोहनः कृष्णः सौभाग्यवरदस्तथा ॥

रुक्मिण्या विजयाच्चूडामणेः सोऽग्रे धनञ्जयात् । सनातनपारिजातस्यमन्तकहरौ तथा ॥ कंसकालीयचाणूरोत्तरमर्दनपूर्वकाः। गोवर्द्धनश्रीसन्तान लक्ष्मीमदनवंशदाः ॥ उत्तरः किञ्च गोपालो वस्त्रापहरणस्तथा । भेदास्तेषामतो वक्ष्ये लक्षणानि यथाक्रमम् ।

तत्र कृष्णलक्षणम् । ब्रह्माण्डपुराणे—

समचक्राद्वारदेशे कृष्णवर्णसुशोभना ।
सा कृष्णमूर्त्तिर्विज्ञेया पूजिता सौख्यदायिनी ॥

तथा--कृष्णः पीतः कृशतनुर्वक्त्रपार्श्वे तु चक्रयुक् । द्वारतुल्यो भवेन्नाभिः कूर्चाकारस्तु पृष्ठतः ॥ कृष्णोवृत्ताकृतिस्तार्क्ष्य सर्वेषां पापनाशन इति ॥

अब सभेद कृष्णमूर्ति के लक्षण बताये जाते हैं--

इनके भेद पुराण संग्रह पर इस प्रकार कहे गये हैं--

जैसे—(शुद्ध) कृष्ण, बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, गोवर्द्धनधारी कृष्ण, त्रैलोक्य मोहनकृष्ण, सौभाग्यवरदकृष्ण, रुक्मिणी कृष्ण, विजयकृष्ण, चूड़ामणिकृष्ण, धनञ्जय कृष्ण, सनातन कृष्ण, पारिजातहर कृष्ण, स्यमन्तकहर कृष्ण, कंसमर्दन-कृष्ण, कालियमर्दन कृष्ण, चाणूर मर्दन कृष्ण । इसी प्रकार से गोवर्द्धन गोपाल, श्रीगोपाल, सन्तान गोपाल, लक्ष्मी गोपाल, मदन गोपाल, वत्स गोपाल, वस्त्रापहारी गोपाल, इतने तो कृष्णगोपाल के भेद हैं । अब आगे जाकर क्रमशः इनके लक्षण भी बताये जायेंगे ।

उनमें पहले (शुद्ध) कृष्ण का लक्षण--

ब्रह्माण्ड पुराणपर—

वह कृष्णमूर्ति होती है जिसके द्वार देश में समचक्र हो और कृष्ण ही वर्ण की हो, सुन्दर हो वह पूजन करने से सौख्य को देती है । तथा—हे गरुड़जी ! कृष्णजी प्रायः कृष्ण वर्ण के होते हुए पीत वर्ण के पतले मुखके पास में चक्रधारी द्वारसदृश नाभिवाले पृष्ठप्रदेश में कूर्चाकार (मार्जनी सदृश)गोलस्वरूप सर्वपापों के ध्वंसकारी होते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा--रेखापञ्चायुधधरं वनमालाविभूषितम्। अब्जचिह्नं सूक्ष्मरन्ध्रं कृष्णमेनं प्रचक्षते ॥ इति।

पद्मपुराणे—

प्रदक्षिणावर्तयुतावनमालाविभूषिता।
या शिला कृष्णसञ्ज्ञा सा धनधान्यसुखप्रदेति ॥

अयं मुखस्य द्वारदेशेऽन्तपार्श्वे वा द्विचक्रः स्पष्ट एव।

अथ बालकृष्णलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

उन्नतो मूर्ध्नि कृष्णाभो निम्नोऽधस्तात् त्रिविन्दुकः। स बालकृष्णो विज्ञेयो दीर्घास्यः पुत्रभाग्यदः ॥ इति। अयंसामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्र एव।

अथ गोपालकृष्णलक्षणम्

ब्रह्माण्डे--कृष्णोऽतिकृष्णो न स्थूलश्चक्राभ्यामुपलक्षितः। वनमालायुतः कण्ठे पृष्ठे श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ दण्डशृङ्गयुतः पार्श्वे वेणुना शोभितो मुखे। सगोपाल इति प्रोक्तो गोभूधान्यधनप्रद इति। अयं स्पष्ट एव द्विचक्रः।

तथा—रेखा के सहित पाँच अस्त्रोंको धारण किये, वनमाला से भूषित, कमल के चिह्न के साथ सूक्ष्म छिद्र वाले भी हों तो उनको कृष्ण कहते हैं। पद्मपुराण में—दक्षिणावर्त से युक्त होकर वनमाला से भूषित जो शिला है वह कृष्ण सञ्ज्ञक होती है। वह धन, धान्य और सुख की देने वाली होती है। मुखके द्वार पर व पास ही में दो चक्र वाली होती है।

बालकृष्ण का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर—

उन्न, शिर पर काले वर्ण के, अधो भागपर कुछ टेढ़े, दीर्घमुख और त्रिबिन्दु वाले बालकृष्ण होते हैं। पुत्र और भाग्य के दाता हैं। द्विचक्र ही० ॥

गोपालकृष्ण का लक्षण—

ब्रह्माण्ड में जो कि कृष्ण होकर भी अति कृष्ण हों, पतले हों, दो चक्र से उपलक्षित हों, कण्ठ में वनमाला और पृष्ठ में श्रीवत्स के चिन्ह हों, पार्श्व में दण्ड और शृङ्गधारी हों, मुख पर वेणु (वंशी) से सुशोभित हों तो वह गो, भूमि, धन और धान्यादिके देने वाले गोपाल कृष्ण कहे जाते हैं। यह द्विचक्र होते हैं सो स्पष्ट ही है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ गोवर्द्धनधरकृष्णलक्षणम्

पञ्चरात्रागमे—दीर्घाकारः कृष्णवर्णश्चतुश्चक्रसमन्वितः। ऊर्ध्वरेखा समायुक्तः पार्श्वे रजतबिन्दुकः॥ स्वर्णबिन्दुसमायुक्तो वनमालाविभूषितः। गोवर्द्धनधरो देवो गोभूधनविवर्द्धन इति। वैखानसागमे—

घनश्यामश्चतुश्चक्रो बिन्दुद्वय समन्वितः।
गोवर्द्धनधरः श्रीमान् सर्वसौभाग्यवर्द्धन इति॥

वामनपुराणे—गोकर्णसदृशं वक्त्रं बहुरूपं विशेषतः। सुवर्णरूप्यबिन्द्वाढ्यं चतुश्चक्रादिकं भवेत्। कलशाङ्कश्च देवेशः सुवर्णसदृशः प्रभः॥

गोवर्द्धनो भवेद्देवः सोऽचलां श्रियमर्थद इति।

अयन्तु स्पष्टएवैकवदने वदनद्वये वा चतुश्चक्रः। चतुश्चक्रादिकमित्यत्रादि शब्दादुद्देशवशाच्च द्विचक्रोप्ययम्॥

अथ त्रैलोक्यमोहनकृष्ण लक्षणम्।

पुराणसङ्ग्रहे—कल्पद्रुमं कोमलाङ्गं वनमालाविभूषितम्। कृष्णवर्णं तथा सूक्ष्मं सूक्ष्मचक्रेण संयुतम्॥ अङ्कुशं च शरञ्चापमूर्ध्वरेखासम-

---

गोवर्धनधारीकृष्ण के लक्षण—

पञ्चरात्रागम में कहा है—

दीर्घाकार, कृष्णवर्ण, चार चक्रसे युक्त, ऊर्ध्व रेखा और पार्श्वभाग में रजत-बिन्दु तथा सुवर्ण बिन्दु एवं वनमाला से शोभित हो तो वह देव गोवर्द्धनधारी कृष्ण हैं, गो, भूमि, धन-धान्यादि की वृद्धि करने वाले हैं।

वैखानसागम में—

मेघश्याम, चतुश्चक्र, द्विबिन्दुकस्वरूप, सर्वसौभाग्यवर्द्धक श्रीमान् गोवर्द्धनधारी कृष्ण हैं।

वामन पुराण में कहा है—

गाय के कान का जैसा मुख हो, विशेष करके बहुवर्ण हों, सुवर्ण और रजत बिन्दु से सम्पन्न हों, चार चक्र हों, कलशका चिन्ह भी हो और सोने की जैसी कान्ति भी हो तो अटल ऐश्वर्य को देने वाले गोवर्द्धनधर भगवान् कृष्ण कहलाते हैं। यह विशेष वाक्य से चतुश्चक्र हैं। पूर्ववत् लक्षणवाक्य से द्विचक्र भी होते हैं। आदि शब्द से उद्देश्य वाक्य का ग्रहण होता है।

त्रैलोक्य मोहन कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह में—

कल्प वृक्ष का चिह्न हो, कोमल अङ्ग हों, वनमाला भूषण हो, सूक्ष्माकार तथा कृष्णवर्ण हो, अङ्कुश, बाण, धनुष और ऊर्ध्व रेखा के चिह्न पाये जाते हों तो उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्वितम् । त्रैलोक्यमोहनं कृष्णं सर्वसम्पत्प्रदायकम् । इति । अयं सामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्र एव ।

अथ सौभाग्यवरदकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—उन्नतः पृष्ठभागे स्यादधोभागेतु वर्त्तुलः । नीलवर्णप्रतीकाशो धनुर्वाणसमन्वितः । साङ्कुशो वामपार्श्वे च वनमालाविभूषितः ॥ सौभाग्यवरदः कृष्णः सर्वसम्पत्प्रदायक इति । अयमपिपूर्ववद्द्विचक्रः ।

अथ रुक्मिणीकृष्णलक्षणम्

पुराणसङ्ग्रहे—स्निग्धं श्याममुखं सूक्ष्मं तप्तजाम्बूनदप्रभम् । समचक्रं सुशोभाढ्यं वामपार्श्वे सबिन्दुकम् ॥ अङ्कुशं वनमाला च ऊर्ध्वरेखासमन्वितम् । रुक्मिणीवल्लभं देवं रुक्मिणीकृष्णसञ्ज्ञकमिति । अयमपि द्विचक्रएव ।

अथ विजयकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—धात्रीफलसमाकारः कृष्णवर्णेनसङ्गतः । धनुर्वाणसमायुक्तो विजयः कृष्णसञ्ज्ञकइति । अयमपि द्विचक्रएव ।

मूर्ति को त्रैलोक्य मोहन कृष्ण जानना चाहिये । वह सर्व सम्पत्ति के देने वाले हैं । यह सामान्य विशेष वाक्यों द्वारा द्विचक्र ही हैं ।

सौभाग्यवरद कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—

सर्वसम्पत्ति के दाता सौभाग्यवरद कृष्ण ऐसे होते हैं—

पृष्ठ भाग ऊँचा रहता है, अधोभाग गोलाकार होता है, नीलवर्ण की छवि होती है, धनुर्बाण और अङ्कुश के चिन्ह होते हैं, वामभाग में वनमालाकार भूषण रहता है । यह भी पूर्ववत् द्विचक्री होते हैं ।

रुक्मिणी कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह में कहा है कि—चिकना स्वरूप, श्यामवदन, सूक्ष्म आकार, तप्त सुवर्ण की कान्ति, समचक्र तथा सुन्दर मूर्ति, वाम भाग में बिन्दु, अङ्कुश, वनमाला और ऊर्ध्वरेखा के चिह्न ये सब उनकी मूर्ति पर लक्षण रहते हों तो उनको रुक्मिणी वल्लभ, रुक्मिणी कृष्ण कहते हैं । यह भी द्विचक्र के ही हैं ॥

विजयकृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—आँवले के फल तुल्य आकारवाले कृष्णवर्ण से युक्त धनुर्बाण चिह्नधारी विजयकृष्ण कहे जाते हैं । द्विचक्र ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ चूडामणिकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—जम्बूफलसमाकारः कुक्कुटासनसंस्थितः। वलयाकृतिरेखाढ्य ऊर्ध्वरेखासमन्वितः। धनुः पाशाङ्कितो देवश्चक्रद्वयसमन्वितः॥ मालया वेष्टितश्चैव कृष्णश्चूडामणिः स्मृत इति। अयं तु स्पष्टद्विचक्रएव।

अथ धनञ्जयकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—सव्यापसव्यरेखाभिर्भूषितः सूक्ष्मचक्रकः। पार्श्वे खुरयुतो देवोधनञ्जयविभुः शुभ इति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ सनातनकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—हिरण्यगर्भसङ्काशः स्थूलचक्रसमन्वितः। कृष्णः सनातनः श्रीमानष्टैश्वर्यफलप्रद इति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ पारिजातहरकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—कृष्णोऽयं पारिजाताढ्यः पारिजातहरः स्मृतः। ब्रह्मचर्यव्रतस्थेन पूजनीयः प्रयत्नत इति। अयमपि द्विचक्रएव।

अथ स्यमन्तकहरकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—अतसीवर्णकः स्थूलश्चक्रभागेऽतिशोभनः। वनमालापरिवृतः

चूड़ामणिकृष्ण का लक्षण—

स्कन्द पुराण पर—

जामून के फलके समान आकार हो, कुकुटासन पर विराजमान हों, ऊर्ध्व रेखा के साथ चूड़ी के आकार की रेखाएँ हों, धनुष, पाश, वनमाला और दो चक्र से अङ्कित हों तो वह चूड़ामणि कृष्ण कहाते हैं। यह भी अनुक्त चक्र होने के कारण द्विचक ही हैं।

धनञ्जय कृष्णका लक्षण—

स्कन्दपुराण पर—

बायीं ओर दाहिनी रेखा से युक्त, सूक्ष्मचक्री, पार्श्व भाग में खुराकार चिह्न से शोभित, शुभस्वरूप भगवान् धनञ्जय देव हैं। द्विचक्री हैं।

सनातन कृष्ण का लक्षण—

स्कन्दपुराण पर—हिरण्य गर्भ सदृश स्थूल चक्रवाले श्रीमान् अष्टैश्वर्य के दाता भगवान् सनातन कृष्ण हैं। यह भी द्विचक्री हैं।

पारिजातहर कृष्ण का लक्षण—

पारिजात वृक्षके चिन्ह से युक्त भगवान् पारिजात हर कृष्ण कहलाते हैं। ब्रह्मचर्य व्रतमें रहकर यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये। द्विचक्री०।

स्यमन्तकहर कृष्ण का लक्षण—

तिस्सी के फूल सदृशवर्ण वाले, स्थूल चक्र भाग के, अति सुन्दर, वनमाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृष्ठे श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ स्यमन्तहारी विज्ञेयः पुत्रश्रीकीर्तिवर्द्धन इति । अयमपि द्विचक्र एव ।

अथ कंसमर्द्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--पूर्वभागैकवदनः पार्श्वैकवदनश्च सः । कंसमर्दी भवेत् कृष्णो नीलाम्बुदसमप्रभ इति । अयन्तु वदनद्वये चतुश्चक्रस्पष्ट एव ।

अथ कालीयमर्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--वामदक्षिणपर्यंतमुखाढ्यश्चक्रशोभितः रेखाढ्यः कृष्णवर्णाढ्यो विन्दुत्रयविभूषितः । कालीयमर्दनः कृष्णः सर्वारिष्टविनाशन इति । अयम्पूर्ववद् द्विचक्रएव ।

अथ चाणूरमर्द्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--रक्तविन्दुद्वययुतः श्यामो दन्तिभुजोपमः । रेखा दक्षिणतो वामे मुष्टिवद्दृढबिन्दुकः ॥ चाणूरमर्द्दनाख्यः स्यात्सर्वशत्रुनिकृन्तत इति । अयमपि द्विचक्र एव ।

अथगोवर्द्धनगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे--

वर्तुलो मस्तके निम्नः पार्श्वे रजतविन्दवः ।

से वेष्टित, पृष्ठ में श्रीवत्स के चिन्हवाले हों तो उनको पुत्र, लक्ष्मी और यशको बढाने वाले स्यमन्तकहारी कृष्ण जानना चाहिये । द्विचक्र ॥

कंसमर्द्दन कृष्ण का लक्षण--

पुराणसंग्रह में इस प्रकार कहा है--पूर्वभाग में एक मुख, पार्श्व भाग में भी एक ही मुख हो और काले मेघ की छवि हो तो वह कंसमर्दी कृष्ण हैं ।

यह दो मुख होने से चतुश्चक्र हैं ॥

कालीय मर्दन कृष्णका लक्षण--

पुराण संग्रह पर कहा है कि--वाम से दक्षिण पर्यन्त मुख से सुशोभित चक्र चिन्हित तीन बिन्दुओं से भूषित, रेखा और कृष्णवर्ण से सम्पन्न हों तो वह सर्वारिष्ट के विनाशकारी कालीयमर्दन कृष्ण हैं । पूर्ववत् द्विचक्री ॥

चाणूर मर्दन कृष्ण का लक्षण--

पुराण संग्रह पर--लाल दो बिन्दुओं से युक्त, काले हाथी के सूँढ समान दीर्घ बाहु, दक्षिण रेखा और वाम भाग में मुष्टि वत् दृढ़बिन्दु से सुशोभित सर्व शत्रु के विनाशकारी चाणूरमर्दन कृष्ण कहलाते हैं । द्विचक्री स्वरूप को पूर्ववत् जानें ।

गोवर्द्धन गोपाल का लक्षण--

गोलाकार होकर भी मस्तक पर कुछ दबे हुए (टेढ़े) पार्श्व में चाँदी की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोवर्द्धनाख्यो गोपालो दीर्घरेखातु दक्षिणे ॥
सर्वकष्टविनाशी स्याद्गोभूधान्यधनप्रद इति । अयमपि द्विचक्र एव ।

अथ श्रीगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे—एतल्लक्षणसंयुक्तं दीर्घाकारं महोदरम् । श्रीगोपालमिमं प्राहुः सरेखं वंशलाभकम् ॥ इति । एतल्लक्षणसंयुक्तं द्विचक्रादि सामान्य-कृष्णलक्षणयुक्तमित्यर्थः ॥

अथ सन्तानगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डे--दीर्घाकारः कृष्णवर्णः सार्द्धचन्द्रनिभाननः स स्यात्सन्तान-गोपालः पुत्रपौत्रादिवर्द्धन इति । अयमपि द्विचक्रः ।

अथ लक्ष्मीगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे-कुक्कुटाण्डसमोपेतः श्रीधरो वनमालया । वेणुलाङ्गलचिह्नाभ्यां कुण्डलाभ्याञ्च चिह्नितः ॥ लक्ष्मीगोपालको देवो दुर्लभो भुवनत्रये । वित्तलाभादिकक्षेमसम्पद्भुक्तिफलप्रदइति । अयमपि द्विचक्र एव ।

बिन्दु, दाहिने भाग में दीर्घ रेखा वाले हों तो गोवर्धन गोपाल जानना चाहिये । वह सर्व सङ्कट के विनाश करने तथा गो, भूमि, धान्य और धन के देनेवाले हैं । यह भी द्विचक्र के हैं ।

श्रीगोपालके लक्षण

पुराण संग्रह में—दीर्घाकार, महोदर और रेखायुक्त इस लक्षण के श्रीगोपाल होते हैं, उनकी पूजा से वंशलाभ होता है । मतलब यह है द्विचक्रादि सामान्य लक्षण युक्त हों ।

सन्तान गोपाल का लक्षण--

ब्रह्माण्ड पुराण में—

सन्तान गोपालजी पुत्रपौत्रादिक को बढ़ाते हैं । दीर्घकार, काले वर्ण के अर्द्धचन्द्राकार वदनवाले होते हैं । यह भी द्विचक्री हैं ।

लक्ष्मीगोपाल के लक्षण—

पुराणसंग्रहमें—

कुक्कुटाण्ड के समान आकार वाले, वनमाला से सुशोभित, बाँसरी और हल के चिन्ह से युक्त देव लक्ष्मीगोपाल हैं । वह तीनो लोक में दुर्लभ हैं । धन लाभादिक कल्याण सम्पत्ति और भोगफल को देते हैं । इनको भी द्विचक्री जानना चाहिये ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ मदनगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे--यो गोपालः पार्श्वभागे कल्पाख्यतरुयुग्भवेत् । सस्यान्मदनगोपालो मालाकुण्डलभूषितः ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्यसर्वलोकैकवश्यद इति । सामान्यगोपाल एव कल्पवृक्षवनमालाकुण्डलयुक्तश्चेत्तर्हि स एव मदनगोपालो भवति । यो गोपालइति सिद्धवन्निर्देशेन सामान्यगोपालस्य परामर्शात् सर्वनाम्नः पूर्वप्रधानपरामर्शित्वात् । एवं यत्रयत्रोक्तवक्ष्यमाणगोपाललक्षणेषु मूर्त्तिविशेषद्योतकं चक्रादि नोक्तं तत्र तत्प्रकृतिभूतसामान्यमूर्त्तिलक्षणोक्तं ग्राह्यमिति । पुराणान्तरे—

अर्द्धश्यामोऽर्द्धरक्तश्च शङ्खचक्रगदाधरः ।
दीर्घछिद्रयुतः सस्याद्गोपालो मदनाह्वयः ॥ इति

अयमपिद्विचक्र एव ।

अथ वंशगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे—श्यामं स्निग्धं तथा सूक्ष्मं वनमालाविभूषितम् । चक्रद्वयं चारुवेणुबिन्दुत्रयसमन्वितम् ॥ धनुर्बाणसमायुक्तं वंशगोपालसंज्ञकम् । इति । अयमपि द्विचक्रएव ।

मदनगोपाल के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—जो गोपाल जी हैं वह पार्श्वभाग में कल्पवृक्ष से युक्त होते हैं और माला, कुण्डलों से भूषित होते हैं। वही पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य के दायक और सर्वलोक के वशकारी मदनगोपाल कहाते हैं। सामान्य गोपाल ही उक्त लक्षण से युक्त हों तो मदनगोपाल होते हैं ऐसा भाव है, क्योंकि "यो गोपालः"''ऐसा सिद्धवन्निर्देश क्यों किया ? उससे मालूम होता है शेष, मदनगोपाल के लक्षण सिद्ध गोपाल के जरिये से जाने जाते हैं। यत् शब्द सर्वादि है, सर्वनाम शब्द पूर्वोक्त सिद्ध वस्तु का बोध कराता है। अतएव जहाँ जहाँ पर निम्नाङ्कित गोपाल के लक्षणों में मूर्ति विशेष के द्योतक चक्रादि चिन्ह नहीं कहे गये हों वहाँ पर सामान्य गोपाल के लक्षण ग्रहण किये जाते हैं।

पुराणान्तर पर—

अर्ध श्याम वर्ण के और अर्ध रक्त वर्ण के शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये, दीर्घ छिद्र से युक्त हों तो वह मदनगोपाल हैं। द्विचक्री० ॥

वंश गोपाल के लक्षण—

पुराण संग्रह में—श्याम और स्निग्ध वर्ण के, सूक्ष्म स्वरूप, वनमाला से भूषित, दो चक्र, तीन बिन्दु और सुन्दर वेणु से युक्त, धनुर्बाण के धारण किये वंश गोपाल कहलाते हैं। यह भी द्विचक्र है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वस्त्रापहारि गोपाललक्षणम्

अधः स्यात्प्रमदाहस्तः पार्श्वे वस्त्रेणाचिह्नितः। प्रच्छन्नसूक्ष्मचक्रस्तु वामे वा दक्षिणेऽपिवा॥ वस्त्रापहारी गोपालः सर्वसम्पत्प्रदायक इति। अयमपि सामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्रएव। इतिकृष्णमूर्त्तीनां सभेदलक्षणानि।

एवं केशवादीनामेकैको भेदो नारायणस्याष्टौ विष्णुदामोदरवासुदेवानां देवानां द्वौद्वौ नृसिंहस्य सप्तदश कृष्णस्यगोवर्द्धनपूर्वसञ्ज्ञकोभयमूर्त्त्यो रैक्याद्द्वाविंशतिर्भेदा उक्ता इत्येवं शुद्धपुरुषोत्तममूर्त्यासह केशवादि चतुर्विंशतिमूर्त्तीनामेकसप्ततिर्भेदा भवन्ति । तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तम मूर्त्तीनां तु यथासम्भवं भेदा भवन्तीति। इति चतुर्विंशतिमूर्त्तिलक्षणानि।

अथाऽनन्तस्य लक्षणान्युच्यन्ते

एतस्य शुद्धत्वनानामूर्त्तिविशिष्टत्वाभ्यामनेके भेदाः सम्भवन्ति। तत्र शुद्धानन्तलक्षणम्। पुराणसङ्ग्रहे—

ध्वजाऽकारयुतारेखा लक्ष्यते मध्यदेशतः।

वस्त्रापहारी गोपाल के लक्षण—

हाथ पर नीचे का हिस्सा स्त्रियों का जैसा हो, पार्श्वभाग में वस्त्र का चिन्ह हो, वाम वा दक्षिणभाग में गुप्त सूक्ष्मचक्र वाले हों तो उनको सर्व सम्पत्ति के दाता वस्त्रापहारी गोपाल जानना चाहिये। पूर्ववद्द्विचक्र की मूर्ति है॥

इस प्रकार से कृष्ण मूर्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए॥

एवञ्च केशवादियों के एक एक भेद हैं। नारायण के आठ भेद हैं। विष्णु, दामोदर और वासुदेव के दो दो भेद हैं। नृसिंहजी के सत्रह भेद हैं। गोवर्द्धनादि पूर्वक कृष्ण और गोपालजी को एक समझ कर दोनों के कुल भेद इक्याईस होते हैं। इस प्रकार शुद्ध पुरुषोत्तम मूर्ति को केशवादि चौबीस मूर्ति के साथ जोड़कर सभी मूर्तियों के एकहत्तर भेद होवे हैं। सो कह चुके हैं। तत् तत् मूर्तिविशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्तियों के तो यथासम्भव भेद होते हैं। इत्यादि।

चौबीस मूर्तियों के सभेद लक्षण समाप्त हुए॥

अब अनन्त के लक्षण बताये जाते हैं।

अनन्त के शुद्धरूप और नाना रूप के भेद से कई मूर्तिभेद के सम्भव होते हैं तथापि पहले शुद्ध अनन्त का लक्षण कहा जाता है।

पुराण संग्रह पर—

जिस मूर्ति के बीच में ध्वजाकार रेखा दीखती है, महास्थूक, शेषजी का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शेषाकारो महास्थूलः सप्तचक्रसमन्वितः ॥
अनन्तइति विख्यातः सर्वसम्पत्तिदायकः ॥ इति ।
अयंसप्तचक्र स्पष्ट एव ।

अथ नानामूर्त्तिविशिष्टत्वशुद्धत्वभेदभिन्नाऽनन्तमूर्त्तीनां लक्षणानि ।

पञ्चरात्रागमे—नागभोगाङ्कितो नानावर्णसङ्कीर्णशेखरः अनन्तो गण्डकीरत्नं पूजितः कामपूर्त्तिकृदिति ।

अग्निपुराणे—

अनन्तो नागभोगाङ्को नानैकानेकमूर्त्तिमानिति ।

ब्रह्मपुराणे—नानावर्णस्त्वनन्तः स्यान्नागभोगेन चिह्नितः । अनन्तमूर्त्ति-सङ्कीर्णः सर्वकामफलप्रद इति । वैखानससंहितायाम्—

नानावर्णमनन्तञ्च नागभोगेनचिह्नितम् ।
अनन्तमूर्त्तिसम्भिन्नं जानीयुः सर्वकामदम् ॥ इति ।

पद्मपुराणे—नानावर्णस्त्वनन्तस्यान्नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्त्ति-सम्भिन्नसर्वकामफलप्रद इति । पुराणसंग्रहे—नानावर्णो ह्यनन्तात्मा नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्त्तिसंभिन्नः सर्वकामफलप्रदः । प्रदक्षिणा-वर्तकृतवनमालाविभूपितः ॥ कृष्णवर्णयुतश्चापि धनधान्यसुखप्रदः । पूजनीयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्चवर्तुल इति ।

जैसा आकार होता है और सात चक्र होते हैं वह सर्व सम्पत्ति के दाता भगवान अनन्त कहलाते हैं । शुद्ध अनन्त सप्तचक्री हैं ॥

नानामूर्ति विशिष्टत्व और शुद्धत्व भेद से विभिन्न अनन्त मूर्तियों के लक्षण-पंञ्चरात्रागम में कहा है कि नाग की फणा से चिन्हित अनेकवर्ण से संकीर्ण है शेखर जिनके ऐसे अनन्त जी गण्डकी के मणि हैं । इनकी पूजा करने से कामना की पूर्ति करने वाले होते हैं ।

अग्निपुराण पर—

अनन्तजी सर्प के शरीर से वेष्टित नाना स्वरूप अनेकानेक मूर्ति धारी होते हैं । ब्रह्म पुराणमें—सर्पशरीर के चिन्ह वाले नाना वर्ण के अनन्तजी होते हैं । अनेक मूर्ति के भेद से विभिन्न अनन्तजी सभी कामना के अनुसार फलदायी हैं वैखानस संहिता पर—सर्प के शरीर से वेष्टित, नानावर्ण के सभी कामना के देनेवाले, अनेकों मूर्तियों के भेद से विभिन्न हो तो अनन्त जी जानें ॥

पद्मपुराण में कहा है—कि नाग के शरीर से चिन्हित अनेक भेद ग्रस्त एवं अनेकों वर्ण के अनन्तजी होते हैं, यह कामना के अनुसार फलदायक हैं । पुराणसंग्रह पर भी—अर्थ वही है । विशेष यह है कि—दाहिनी ओर से घूमती हुई वनमाला से भूषित कृष्णवर्ण के भी होते हैं, वह धन, धान्य और सुखको देते हैं । वह स्थिर, स्निग्ध तथा गोल हों तो और भी यत्न से पूजा करना चाहिये ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णुरहस्ये—

द्वारोपरि तथा रेखा ध्वजाकारा सुशोभना।
नानावर्णो ह्यनन्तः स्याद्भोगिभोगेन चिह्नितः॥

चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमन्वितः। अनेकमूर्त्तिसंयुक्तः सर्वकामफलप्रद इति॥ तथा—नातिस्थूलं नातिह्रस्वं वनमालायुतं हरिम्। अनन्तमितिविख्यातं भूमौ सर्वत्रदुर्लभमिति॥

पद्मपुराणे—अनन्तचक्रैर्बहुभिश्चिह्नैरप्युपलक्षितः।
अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रद इति॥

अत्रानन्तचक्रैरिति सप्तचक्रादूर्ध्वं यावत्सम्भवचक्रैरित्ययमर्थ उद्देशवाक्यबलाद्वेदितव्यः। अतोऽष्टचक्रादि त्रयोदशचक्रान्ता महानारायणानन्तोऽच्युतानन्त हृषीकेशानन्त इत्याद्यास्तत्पूर्वसंज्ञका अनन्ता भवन्ति। तत्रैकादशचक्रः शिवनाभियुक्तः सन् रुद्रानन्तोऽन्यथातु शुद्धानन्तः। चतुर्दशादि चतुर्विंशति चक्रान्ता विश्वंभरानन्ताः। तत्राष्टादशचक्रः पुरुषोत्तमानन्तोऽपि। तदूर्ध्वमनेकाकारसंयुक्ता अपि यावत्संभवचक्रान्ता अनन्ता इत्येव विशुद्धसञ्ज्ञका भवन्तीति। इत्यनन्तमूर्त्तिलक्षणानि।

विष्णुरहस्य पर—

अनन्तजी नानावर्ण के होते हुए भी सर्प के शरीर से चिन्हित रहते हैं, द्वार के ऊपर तो रेखा रहती और ध्वजाकार युक्त सुन्दर मूर्ति होती है। जहाँ पर चार रेखाएँ दीखाई देती हैं वह पार्श्वभाग के रहते—अनेकों मूर्तियों से संयुक्त रहते हैं और सभी कामनाओं के दायक हैं॥ तथा—अति स्थूल न हो, अति ह्रस्व (छोटे) भी न हों, वनमाला से युक्त हों तो उनको अनन्त संज्ञक हरि कहते हैं। उनको प्राप्त करना भर-पृथ्वी में दुर्लभ है॥ पद्मपुराणमें—अनन्त चक्र और बहुतेरे चिन्हों से उपलक्षित हों तो उनको अनन्त जानना चाहिये। वह सर्व देव-पूजा के फल को देते हैं॥ "अनन्त चक्रैः……"इस प्रमाण से सात से ऊपर जितने भी अधिक चक्रों का सम्भव हो ऐसा लाक्षणिक वाक्य द्वारा जानना चाहिये। अब आठसे लेकर तेरह चक्र पर्यन्त महानारायण-अनन्त, अच्युत-अनन्त, हृषीकेश-अनन्त इत्यादि पहले कुछ नामवाले अनन्त होते हैं। उनमें एग्यारह चक्रवाले शिवनाभि युक्त हों तो रुद्रानन्त नहीं तो शुद्धानन्त जानना चाहिये। चौदह से चौबीस चक्र तक के विश्वम्भरानन्त होते हैं। उनमें भी अट्ठारह चक्रवाले पुरुषोत्तमानन्त भी होते हैं। चौबीस से उपर जितनी संख्या तक के चक्र हों वे सब विशुद्ध अनन्त सञ्ज्ञक होते हैं। इस प्रकार अनन्तों के लक्षण बताये गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ विश्वरूपलक्षणम

पुराणसङ्ग्रहे—

पञ्चवक्त्रं स्थूलतरं पुरुषं बहुचक्रकम् ।
विश्वरूपमनन्तं वा पुत्रपौत्रादिकप्रदमिति ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

विश्वरूपो हरिः साक्षात्पारावतगलोपमः ।
बहुचक्राङ्कितोऽनेकमूर्त्तिरूपसमन्वितः ॥

पञ्चवक्त्रः स्थूलचक्रः पुरुषो बहुचक्रकः । विश्वरूपो ह्यनन्तोवा पुत्रपौत्रादिकप्रद इति ॥ अत्र पञ्चमुखत्व तत्सहचरबहुत्वयोः प्रयोगाद्दशचक्रकोऽयं विश्वरूप इत्यर्थः । अनन्तोवेत्ययमेव पूर्वोक्तानन्तमूर्त्तिलक्षणघटितः सन् विश्वरूपानन्तसंज्ञको भवतीत्यर्थः ।

अथ विश्वम्भरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—चक्राणामाचतुर्विंशद्युक्तो विश्वम्भरः शुभः । भुक्तिप्रदो ह्यसौ नृणामन्ते मोक्षप्रदायक इति ॥ अयं चतुर्दशचक्रादूर्ध्वमाचतुर्विंशति चक्राङ्कितो विश्वम्भर इत्युद्देश वाक्यमेव ज्ञापयति । अस्यैवाऽनन्तमूर्त्ति-लक्षणघटितत्वे सति विश्वम्भरानन्तसञ्ज्ञा सम्पद्यते ।

विश्वरूप के लक्षण—

पुराण संग्रह पर कहा है—पाँच मुख के बहुत चक्रवाले अतिस्थूल पुरुष को विश्वरूप वा अनन्त कहते हैं । वह पुत्र पौत्रादि दायक होते हैं ।

ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है कि—

साक्षात् विश्वरूप हरि भगवान् कबूतर के कण्ठ के जैसे वर्णवाले, बहुत चक्र से चिन्हित नानामूर्ति और रूपधारी होते हैं । अपिच पञ्चमुख, स्थूल चक्र होकर बहुचक्र भी हों तो वह विश्वरूप वा अनन्त हैं और पुत्रपौत्रादि के आदिपदेन षडेश्वर्य के दाता हैं । पञ्चमुख के साथ ही बहुचक्र शब्द भी आया है अतः प्रत्येक मुख पर दो चक्र के हिसाब से दशचक्र की मूर्ति जाननी चाहिये, मूल में तो ऐसा कहा है परन्तु स्थूल चक्र को उनसे अलगही मानलिया जाय तो एग्यारह चक्र भी होते हैं । "अनन्तो वा" ऐसे विकल्प वचन से पूर्वोक्त अनन्त मूर्ति के लक्षण से घटित होते हुए विश्वरूप कहलाते हैं ऐसा भाव है ।

विश्वम्भरजी के लक्षण

ब्रह्माण्डपुराण पर—चौबीसचक्र पर्यन्त की शुभ मूर्ति का नाम विश्वम्भर । यह मनुष्यों के लिये भोग और अन्तकाल में मोक्ष के दायक होते हैं । यह चौदह चक्र से ऊपर चौबीस पर्यन्त चक्रवाले विश्वम्भर होते हैं, ऐसा लक्षण वाक्य द्वारा ही बोध होता है । अनन्त मूर्ति के लक्षणों से घटित हो तो इसी मूर्ति को "विश्वम्भरानन्त" भी कहा जाता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ हयग्रीवलक्षणम्

पद्मपुराणे—हयग्रीवा यथा लम्बरेखिका या शिलाभवेत्। हैयग्रैवी शिलासास्यात् पूजिता ज्ञानदा नृणामिति ॥ अग्निपुराणे—

हैयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखानीलसबिन्दुकः। इति। पद्मपुराणे—हैयग्रीवस्तु विज्ञेयो योऽङ्कुशप्रतिरूपकः। चक्रध्वजसमायुक्तः पूजितः सौख्यदो भुवि। इति, वाराहे—हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखाचक्रसमन्वितः। कृष्णवर्णः सविख्यातो महासारस्वतप्रद इति।

ब्रह्मपुराणे—

हयग्रीवो हयाकारो रेखा चक्रसमीपगा।
बहुरूपसमाकीर्णः पृष्ठे स्यान्नीलरूपक इति ॥

पद्मपुराणे—हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखा चक्रसमीपगा। हरिद्वर्णः स आख्यातो बहुबिन्दुसमन्वित इति ॥ तथा—हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखाः पञ्च भवन्ति हि। बहुबिन्दुसमाकीर्णो दृश्यते नीलरूपकः। इति। तथा—

हयग्रीव के लक्षण—

पद्मपुराण में—जो घोड़े की गर्दन की जैसी लम्बी रेखा वाली शिला होती है उसको "हैयग्रैवी" शिला (हैयग्रीव) कहते हैं। पूजा करने से मनुष्यों के लिये ज्ञान देती है।

अग्निपुराण में—

अङ्कुशाकार, बिन्दुधारी, नीलवर्णवा नील रेखा से युक्त हयग्रीव जी होते हैं। फिर पद्म ही पुराण में—हयग्रीवजी अङ्कुश के सदृश चक्र और ध्वजा से संयुक्त मर्त्यलोक में पूजा से सौख्य के दाता होते हैं।

वराहपुराण पर कहा है—हयग्रीव जी अंकुशाऽऽकार, रेखा और चक्र से युक्त कृष्णवर्ण के होते हैं। वह सरस्वती सम्बन्धी ज्ञान (विद्या) के दाता हो कर उक्तनाम से प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मपुराण में—

हयग्रीव जी घोड़े के आकार के बहुत रूप (वर्ण) से व्याप्त होते हैं। उस मूर्ति पर चक्र के पास में रेखा होती है और पृष्ठ भाग नील वर्ण का होता है। पद्मपुराण में और भी कहा है कि—हयग्रीवजी अङ्कुशाकार के होते हैं। चक्र के पास ही में रेखा होती है। बहुत बिन्दु से युक्त होकर वह हरित वर्ण से प्रसिद्ध हैं। तथा—हयग्रीव जी नीलवर्ण के, बहुत वर्ण और बिन्दुओं से युक्त, अङ्कुशाकार मूर्ति होकर पाँच रेखा वाले दीखते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्वाकृतिमुखं यस्य साक्षमालं शिरस्तथा। पद्माकृतिर्भवेद्वापि हयशीर्षा त्वसौ मत इति। पुराणसङ्ग्रहे—

हयग्रीवोऽपि भगवान् रक्तपीतादिमिश्रितः।
अङ्कुशाकृतिकस्तार्क्ष्य चक्रद्वयसमन्वितः॥

पद्माकृतिस्तथा पार्श्वे कुण्डलाकृतिरेव वा। ज्ञानदो मोक्षदो नृणां भोगदो विनतासुतेति। अयं सामान्यविशेषवाक्याभ्यां द्विचक्रः।

अथ क्षीराब्धिशायिलक्षणम्

स्कान्दे—एकचक्रं च वदने पञ्चायुधलसत्तनुः। पृष्ठे सुवर्त्तुलारेखा क्षीरकान्तिसमन्वितम्॥ चक्रस्योभयपार्श्वेच फणिपञ्जरशोभितम्। सुवर्त्तुलं तथा स्निग्धं क्षीराब्धिशयनं विदुरिति। अयन्त्वेकचक्रः स्पष्टः।

अथ पुण्डरीकाक्षलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—पार्श्वे वा मूर्ध्नि पृष्ठे वा चामरद्वयसंयुता। कमलद्वयसंयुतेति पाठान्तरम्। पुण्डरीकाक्षमूर्त्तिः स्यात् सर्वलोकवशङ्करीति।

तथा—कमल वा अश्व के आकार का जैसा शिर, अश्वाकार मुख और जपमाला वा रुद्राक्षमाला से युक्त हों तो वह हयग्रीव कहलाते हैं।

पुराणसंग्रह पर लिखते हैं कि--

हे गरुड़जी! हयग्रीव भगवान भी लाल पीला इत्यादि वर्ण से संकीर्ण, अङ्कुशाकार और दो चक्र से युक्त होते हैं। उनका पार्श्वभाग पद्माकार वा कुण्डलाकार का होता है। हे वैनतेय! वह मनुष्यों के लिये ज्ञान, भोग और मोक्ष के दाता हैं। इत्यादि। यह भी सामान्य विशेष द्वारा द्विचक्र होते हैं॥

क्षीराब्धिशायी का लक्षण—

स्कन्दपुराण में लिखा है कि उस मूर्ति को "क्षीराब्धिशायी" कहते हैं जिसके मुँह पर एक चक्र हो, कामदेवकासा सुन्दर गात्र हो, पृष्ठ भाग में गोलाऽऽकार की रेखा हो, दूध की जैसी उज्ज्वल कान्ति हो, चक्र के दोनों बगल में साँप के शरीर से वेष्टित हो, खूब गोल स्वरूप हो तथा चिकना भी हो। यह एक चक्री०॥

पुण्डरीकाक्ष जी का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर कहा गया है कि—

पार्श्वभाग वा शिर अथवा पृष्ठ भाग पर दो चामर हो अथवा पाठ भेद माने तो (चामर नहीं किन्तु) कमल से युक्त हो तो उसे सर्वलोक को वश में रखने वाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष कहलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा—

द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारा सुशोभना ।
पार्श्वे वा मूर्ध्नि पृष्ठे वा नयनद्वयसंयुतेति ॥

अयमनुक्तवर्णचक्रत्वात्कृष्णवर्णो द्विचक्रश्च ।

अथ यज्ञमूर्त्तिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—यज्ञमूर्त्तिस्तु भगवान् पीतरक्तादिमिश्रितः द्वारस्य वामतश्चक्रे स्रुक्स्रुवौ दक्षिणेतथेति ॥ पुराणसङ्ग्रहे—

पीतरक्ता यज्ञमूर्त्तिरितिवेदविदो विदुरिति ।

अयं चक्रे इति द्विवचनाद् द्विचक्रः ।

अथ वैकुण्ठलक्षणम्

पञ्चरात्रागमे—चक्रवान् पार्श्ववान् वृत्तो गुणी रत्नगुणोपमः ।
वैकुण्ठ उपरिष्टाद्वा रेखायुक्तोऽतिशोभनः ॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—वैकुण्ठो मणिवर्णाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम् । द्वारोपरि तथारेखा कञ्जाकारा सुशोभनेति ॥ अग्निपुराणे—

तथा—

द्वारोपरि रेखा हो, कमलस्वरूपकी खूब सुन्दर, पार्श्व, शिर वा पृष्ठ पर दो नेत्र से युक्त हो तो वह मूर्ति "पुण्डरीकाक्ष" कहलाती है। इस मूर्ति का वर्ण और चक्र कुछ भी नहीं बताया गया है अतः द्विचक्र और कृष्णवर्ण की जाननी चाहिये।

यज्ञमूर्ति का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराणमें—यज्ञमूर्ति भगवान् पीतरक्तादि वर्ण से मिश्रित होते हैं। उस मूर्ति के द्वार सम्बन्धी वामभाग में दो चक्र होते हैं और दक्षिण भाग में स्रुक् स्रुव होते हैं। (स्रुक्=यज्ञ पात्र, स्रुव=एक हाथ की यज्ञ में अग्नि पर घी डालने की खयर की लकड़ी)॥ पुराणसंग्रह में—पीतरक्त वर्ण से मिश्रित मूर्ति का वेदपाठी लोग यज्ञमूर्ति कहते हैं। यह मूर्ति द्विवचन से दो चक्र की है।

वैकुण्ठ का लक्षण—

पञ्चरात्रागम पर—चक्रवान्, प्रशंसनीय पार्श्वभाग वाले, गोल, गुणाकर रत्न के समान गुणदायी, ऊपर और द्वारभाग में रेखा युक्त, अति सुन्दर मूर्ति वैकुण्ठजी कहे गये हैं।

ब्रह्माण्डपुराणमें—

वैकुण्ठजी का वर्ण मणिसदृश होता है, एकचक्र, एक कमल तथा द्वार के ऊपर कमलाकार वा शंखाकार की रेखा होती है। अग्निपुराण में—वैकुण्ठजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैकुण्ठस्त्वेक चक्राब्जो मण्याभः स्वच्छरेखक इति ।

वैखानससंहितायाम्—वैकुण्ठोमणिरत्नाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम् । द्वारोपरि तथा रेखा पद्मचिह्नेन चिह्नितः ॥ इति । ब्रह्माण्डपुराणे—

वैकुण्ठोमणिवर्णाभो वामपार्श्वैकचक्रकः ।
द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारासुशोभना ॥

तथा—अतिस्निग्धः सुवृत्तश्च वर्त्तुलद्वारसंयुतः । बिलमध्ये तथा चक्रं दृश्यतेऽत्यन्तशोभनम् । वैकुण्ठोमणिवर्णाभो वामपार्श्वैकचक्रकः ॥ चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे द्युमणिर्भासुरो भवेत् । बकुलाकृतिश्च दृश्येत मोक्षादि फलदायक इति ॥ विष्णुरहस्ये—

पद्मरेखागदाकारलाञ्छनं मध्यदेशतः ।
वैकुण्ठोमणिरत्नाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजमिति ॥

तथा—वैकुण्ठोमणिरत्नाभो वामतश्चैकचक्रकः । ह्रस्वचक्रोऽतिशोभन

एकचक्र और एक ही शंख वा कमल से युक्त, मणि सदृश कान्तिमान् स्वच्छ रेखा वाले होते हैं ।

वैखानस संहिता में—

वैकुण्ठजी की कान्ति मणि सदृश होती है । एक चक्र और एक ही शंखाकार होता है । द्वार के ऊपर रेखा होती है । एवं पद्म का चिह्न भी रहता है । यहाँ पर अम्बुजपद से शंख लीलिये क्योंकि पद्म का नाम पृथक् कहा है । ब्रह्माण्डपुराण में वैकुण्ठजी मणि के सदृश तथा वामभाग में एक चक्रवाले द्वारदेश में पद्माकार सुन्दर एक रेखा से शोभित होते हैं ।

तथा—अति स्निग्ध, गोलाकार, और गोलाकार ही के द्वारवाले वैकुण्ठजी होते हैं । मूर्ति संबन्धी छिद्र के मध्यभाग में सुन्दर चक्र दीखता है । वह मणि वर्ण के होते हैं ॥

एवञ्च वैकुण्ठजी मणिवर्ण के, वाम पार्श्व में एक चक्रवाले, चक्र के दक्षिण भागमें कान्तिमान् सूर्य से युक्त होते हैं, और बकुलाकार भी दीखते हैं फल वह मोक्षादि के दायी हैं ।

विष्णु रहस्यपर—

वैकुण्ठजी मणिरत्न के सदृश होते हैं । मध्यभाग में पद्म, रेखा और गदाकार के चिन्ह रहते हैं, एक चक्र तथा एक शंख भी रहता है ।

तथा—वैकुण्ठजी मणि रत्न (श्रेष्ठमणि) के समान कान्तिमान्, वाम भाग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति वा पाठः। द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारासुशोभनेति ॥ तथा— वैकुण्ठो मणिरेखा च चक्रमेकं गदाम्बुजम्। द्वारोपरि तथा रेखा घटाकारा सुशोभनेति ॥ तथा—मधुवर्णं तथा स्थूलं चक्रं वामाङ्गसंस्थितम्। वैकुण्ठं नाम देवेशं ब्रह्मलोक प्रदायकम् ॥ इति। अयन्तु स्पष्ट एवैकचक्रः। अनुक्तचक्रलक्षणेष्वप्येकमेव चक्रं ज्ञेयम्।

अथऽमृताहरणलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—वर्त्तुलोहस्ववदनो ह्रस्वचक्रोऽतिकोमलः। मध्यचक्र इति वा पाठः। अमृताहरणो देवो नीलोत्पलसमप्रभ इति। अयमनुक्त चक्रसंख्यात्वाद्द्विचक्रः। अथपीताम्बरलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

द्वारदेशे भवेच्चक्रं बहुवर्णसमन्वितः।
पीताम्बरधरोदेवः सौख्यदः फलदोऽर्चित इति ॥

एतस्य चक्रमित्येकवचननिर्देशादेवचक्रत्वं स्पष्टमेव।

अथ सत्यवीरश्रवसो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—सुवर्तुलो ह्यचक्रः सर्वाङ्गे हेमविन्दवः। सत्यवीरश्रवाः

में एक चक्रवाले (पाठ भेद मानें तो मध्यचक्र और अति सुन्दर-स्वरूप) द्वार भाग के ऊपर पद्माकार रुचिर रेखा से युक्त होते हैं।

तथा—कोई पद्माकार रेखा के स्थान पर घटाकार रेखा और सादा भी मानते हैं, बाकी पूर्ववत् जानें ॥ अपिच-मधुवर्ण के, स्थूलाकार, वामाङ्गचक्री लक्षण के हो तो ब्रह्मलोक के दाता वैकुण्ठसंज्ञक भगवान् कहे जाते हैं। यह एकचक्र है सो स्पष्ट ही है। यहाँ पर अनुक्त चक्रलक्षण में एकचक्र ही जानना चाहिये।

अमृताहरण का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—गोलाकार, ह्रस्ववदन, ह्रस्वचक्र वा पाठान्तर से मध्य चक्रवाले, अति कोमल और नील कमल के सदृश कान्तिमान्, अमृताहरण देव कहलाते हैं। अनुक्तचक्र होने के कारण यह द्विचक्र हैं।

पीताम्बर का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—जिनके द्वार देश में चक्र हो वह बहुवर्ण से युक्त हों तो पूजा करने से सौख्य और फलको देने वाले पीताम्बरधारी भगवान् कहलाते हैं। चक्र शब्द पर एक वचन देखा गया है, अतः इनको एकचक्री जानें।

सत्यवीरश्रवा के लक्षण—

ब्रह्मपुराण पर बताया है कि—अच्छे गोल, सुन्दर चक्र वाले और सर्वाङ्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रोक्तः सवसौभग्यवर्द्धन इति। तथा—वर्त्तुलः पञ्चवक्त्रः स सर्वाङ्गे हेमविन्दवः। सत्यवीरश्रवाः प्रोक्तः सर्वसौभाग्यवर्धन इति।

अस्य पञ्चास्यत्वकथनाद्दशचक्रत्वं स्फुटमेव। अयं पूर्वोक्तानन्तलक्षण-घटितः सन् सत्यवीरश्रवोऽनन्तसञ्ज्ञको भवति।

अथ श्रीवत्सलाञ्छनलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—श्रीफलाकारसदृशं पीतं च समचक्रिणम्। श्रीवत्स लाञ्छनं नाम स्त्रीहत्याया विनाशनम् इति। तथा—

श्रीफलाकारकं ज्ञेयं पीताख्यं वामचक्रिणम् श्रीवत्सं नामदेवेशं हत्या-कोटिविनाशनम्॥ इति। अयमपि द्विचक्रः॥

अथ वनमालिनो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—शिला शुभ्रा च सुश्लक्ष्णा शुभ्रचक्रा सुशोभना। वनमाली सविज्ञेयो ह्यश्वमेधफलप्रद इति। अयमपिद्विचक्रः

अथ श्रीसहाय लक्षणम्

पुराणसंग्रहे—चक्रैस्तु केवलैर्यस्तु पञ्चभिः समलङ्कृतः। वनमालाङ्कित-श्चैव सज्ञेयः श्रीसहायक इति। अयन्तु पञ्चचक्रः स्पष्टएव।

में सोने की बिन्दुओं से युक्त हों तो सभी सौभाग्य के बढ़ाने वाले "सत्य वीर-श्रवा" कहे जाते हैं। तथा—

पाँच मुख के गोलाकार और सर्वाङ्ग पर सुवर्ण बिन्दुओं से युक्त हों तो वह सभी सौभाग्य के बढ़ाने वाले सत्यवीरश्रवा कहे जाते हैं। पाँच मुख को बताने से ही मालूम होता है कि ये दश चक्र होते हैं। पूर्वोक्त रीति से, अनन्त लक्षण घटित होते हुए सत्यवीरश्रवा अनन्त कहाते हैं। ऐसा भाव है।

श्रीवत्सलाञ्छन का लक्षण—

श्रीफलाकार के सदृश, पीतवर्ण और समान चक्रवाले, स्त्री हत्या संबन्धी पापके विनाशकारी "श्रीवत्स लाञ्छन" नाम के देव कहाते हैं॥

श्रीफलाकार याने बेल के जैसे वामचक्री और पीले वर्ण के करोड़ों हत्या के विनाश करनेवाले "श्रीवत्स लाञ्छन" सञ्ज्ञक भगवान् हैं॥ द्विचक्री॥

वनमाली का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण का वचन है कि—सुफेद, सूक्ष्म, सुन्दर और शुभचक्र वाली शिला को अश्वमेध के फल को देनेवाले भगवान "वनमाली" जानना चाहिये। द्विचक्री॥

श्रीसहाय का लक्षण—

पुराण संग्रह पर बताया है कि—जो खाली पाँच चक्रों से मात्र अलंकृत हैं, साथ ही वनमाला भी दीखती है, तो वह श्रीसहाय सञ्ज्ञक होते हैं। स्पष्ट ही यह पञ्चचक्री मूर्ति है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ मुकुन्दलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अत्यास्यो बहुचक्रश्च श्यामवर्णस्तथोज्ज्वलः। मुकुन्दः सर्वपापघ्नः पौण्डरीकफलप्रद इति॥ अत्यास्य षण्मुख इत्यर्थः।

तथा चोक्तं ब्रह्माण्डे—

षण्मुखेन मुकुन्दाख्यः सतां मुक्ति प्रदायक इति।

एतस्य षण्मुखत्वाद् द्वादशचक्रत्वम्। अयं पूर्वोक्तानन्तलक्षणलक्षितश्चेन्मुकुन्दानन्तसञ्ज्ञको भवति।

अथ गरुडध्वज लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—स्वर्णशृङ्गखुरः सौम्यो वर्तुलः स्निग्धकेशरः। चक्रे मध्यगते कृष्णरेखाबिन्दुविभूषितः। लक्ष्मीकरो वैनतेय गरुडध्वज सञ्ज्ञकः। इति। अयमपि चक्रे इति द्विवचनाद् द्विचक्र एव।

अथ चतुर्भुजलक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—चतुर्भुजश्चतुश्चक्रो नवमेघसमद्युतिः। मण्डलाकारचक्रः स्यात्सर्वेषामभयप्रद इति। अत्रविशेषाभावादेकस्मिन् वदने वदनद्वये वा चतुश्चक्रत्वं ज्ञेयम्।

मुकुन्द का लक्षण—

अतिमुख और बहु चक्रधारी, साँवले वा सुफेद वर्ण के सभी पाप को हरण करते हुए पौण्डरीक (सभी धर्मकार्य) के फलदाता भगवान् मुकुन्द जी होते हैं। अतिमुख = षण्मुख॥

क्योंकि ब्रह्माण्ड में बताया है कि—षड्मुख; सज्जनों के लिये मुक्ति के देने वाले मुकुन्द कहलाते हैं॥ षड्मुख के बारह चक्र होते हैं क्योंकि प्रत्येक पर दो चक्र होते हैं॥ पूर्ववत् इनको "मुकुन्दानन्त" जानना चाहिये।

गरुडध्वज के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—सुवर्ण के सींग और खुरवाले सुन्दर, गोलाकार, चिकनी, जटाधारी, बीच में दो चक्रों के रहते कृष्ण रेखा और बिन्दु से भूपित हों तो हे गरुड़ जी! वह गरुड़ध्वज कहलाते हैं और लक्ष्मीदायक होते हैं। यह भी "चक्रे" इस द्विवचनपद से दो चक्र के मालूम पड़ते हैं।

चतुर्भुज का लक्षण—

ब्रह्मपुराण का वचन यह है कि—नये मेघ के समान कान्तिवाले, मण्डलाकार, चतुश्चक्रधारी, सबके अभयदाता भगवान् चतुर्भुज कहे जाते हैं। विशेष वचन तो कोई नहीं है कि, जिनके चार चक्र कहाँ पर होते हैं; सो पता लगा लिये जावें अतः एक ही मुखपर वा दो पर चार चक्र होते हैं ऐसा फलतः जानना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ जगद्योनिलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—द्वारश्चक्रो रक्तवर्णो जगद्योनिः सुखप्रदः। तस्यदर्शनमात्रेण ह्यभीष्टफलमाप्नुयादिति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ चक्रपाणिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—पूर्वभागे त्रिवदनः पश्चादेकास्य संयुतः। चक्रपाणिरिति ख्यातश्चक्रवर्तित्वदायक इति॥ एतस्य चतुर्मुखत्वादष्टचक्रत्वम्।

अथ गदाधर लक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—गदाधरस्तथा देवो गुरुरूपः समन्ततः। चक्रस्निग्धोऽति कृष्णश्च पद्ममेकं च दक्षिण इति॥ गुरुरूपो बृहस्पतिवर्णः पीतइत्यर्थः।

पुराणसंग्रहे—गदाधरस्त्रिरेखाभिर्लाञ्छितो मध्यदेशतः। ध्वजवज्रांकुशैः पीतो वामचक्रः सुवर्तुल इति॥

जगद्योनि का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर प्रमाण आया है कि—रक्तवर्ण के द्वार पर चक्रवाले सुखदायक जगद्योनि कहाते हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य इच्छानुसार फल को पाकर कृतार्थ हो जाता है। यह भी द्विचक्री है॥

चक्रपाणि का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण के प्रमाण से कहा जाता है कि—आगे तो तीन मुख हों, पीछे एक ही हो तो वह चक्रवर्तित्व याने साम्राज्य के दाता चक्रपाणि कहे जाते हैं। चतुर्मुख, अष्टचक्र॥

गदाधर जी का लक्षण—

ब्रह्मपुराण के हिसाब से—गदाधर जी चारों ओर गुरु (स्थूल वा वजनदार) रूप के चक्रों से स्निग्ध, दक्षिण भाग में एक कमल के धारण किये अति कृष्ण होते हैं। मूल में गुरुरूप को बृहस्पति वर्ण अर्थात् पीतवर्ण कहकर समझाया है। परन्तु यहाँ पर गुरु शब्द से देवगुरु को लेना संगत नहीं दीखता है क्योंकि उसी श्लोक में आगे जाकर "कृष्णश्च" ऐसा भी कहा है, चकार लक्षण समुच्चयार्थ है, वर्ण समुच्चयार्थ नहीं। वास्तव में वह अन्यप्रमाण से पीतवर्ण के भी होते ही हैं परन्तु अन्य प्रमाण से, सो आगे बताया जाता है॥

पुराणसंग्रह पर बताया है कि—गदाधर जी का वर्ण पीला होता है। मध्य भाग में तीन रेखाएँ होती हैं, आकार गोल होता है और ध्वजा, वज्र एवं अङ्कुश के चिह्न होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराणे—चक्रद्वयं शुभं यस्य श्यामाङ्गो वर्तुलाकृतिः। देवो गदाधरोनाम राजसूयफलप्रदः॥ इति। अयं स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ लक्ष्मीपतिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—मुखे वै पार्श्वतो वापि मयूरगलसन्निभः। कृष्णवर्णः सूक्ष्मचक्रः पृथुलास्यः स्रगन्वितः॥ लक्ष्मीपतिरितिख्यातो लक्ष्मीसम्पत्तिदायकः। इति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्रएव।

अथ देवदेवलक्षणम्

स्कन्दपुराणे—दूर्वाभः सूक्ष्मवदनः पीतरेखाः सुसूक्ष्मकाः। विदिक्षु दिक्षु सर्वासु दृश्यन्ते च समन्ततः॥ सदेवदेवो विज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तम इति॥ अयमपि द्विचक्रः।

अथाऽव्यय लक्षणम्

ब्राह्मे—प्रदक्षिणावर्त्तयुतो वनमालाविभूषितः। कृष्णवर्णयुतश्चापि धनधान्यसुखप्रदः॥ पूजनीयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्च वर्तुलः। बहुवक्त्रो द्वारचक्रः सौख्यदस्तेन चाव्यय इति॥ अस्य बहास्यत्वकथना दुपस्थितत्यागे मानाभावेन त्रिवक्त्रत्वात् षट्चक्रत्वं भवति।

स्कन्दपुराण में—जिस मूर्ति के दो चक्र हों, अङ्ग श्याम हो, आकार गोल हो, उस मूर्ति के देव गदाधरजी हैं, वह राजसूय यज्ञ का फल देते हैं। द्विचक्र०॥

लक्ष्मीपति का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—मुख वा पार्श्वभाग मोर का कण्ठ जैसा हो, वर्ण काला, चक्र सूक्ष्म, मुख विशाल, और भूषण माला हो तो वह श्री सम्पत्ति के देनेवाले लक्ष्मीपति कहलाते हैं। द्विचक्र मूर्ति०॥

देवदेव का लक्षण—

स्कन्दपुराण में लक्षण कहा है कि देवदेव इस प्रकार के होते हैं, जैसे कान्ति दूर्वासदृश की, वदन सूक्ष्म और रेखाएँ भी पीतवर्ण की अतिसूक्ष्म होकर आठों दिशाओं पर दीखती हैं। उनको ही पुराणपुरुषोत्तम कहते हैं। द्विचक्रस्वरूप०॥

अव्यय का लक्षण—

ब्रह्मपुराण में ऐसा प्रमाण है कि,—दाहिनी ओर आवर्तवाले वनमाला को पहने हुए, स्थिररूप, चिकने, गोल, काले वर्ण के, बहुमुख और द्वारपर चक्र इत्यादि चिन्हवाले भगवान अव्यय संज्ञक होते हैं। यह धन धान्यादिक सुख के दाता हैं, सुखदायी होने से ही इनकी अव्यय सञ्ज्ञा पड़ी है, अतः इनकी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, प्रत्येक मुख पर दो चक्रों का हिसाब आया है, अतः बहुशब्द से पहले की उपस्थित संख्या तीन है, इसलिये "बहु वक्त्रः" से तीन मुख लीजिये, उनपर छः चक्र होते हैं॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ धरणीधरलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—वर्त्तुलो द्वारचक्रश्च शिलास्थूलः सुशोभनः। धरणीधरः स विज्ञेयः सर्वयज्ञफलप्रद इति ॥ अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्रः।

अथ शेषस्य लक्षणम्

पद्मपुराणे—नागवत्कुण्डलीभूतरेखापङ्क्तिः स शेषक इति।

ब्रह्माण्डपुराणे—अथवा कुण्डलीभूत नागभोगसमन्वितः। शेषमूर्त्तिस्तु भगवानशेषैश्वर्यदायक इति ॥ तथा-पृष्ठादिमूर्द्धपर्यन्तं वलयाकाररेखया। सुवर्णनिभया द्वित्रिचतुःपञ्चादिसंङ्ख्यया ॥ संयुक्ता समचक्राढ्या श्यामा नीला सिताऽपिच। शेषमूर्त्तिरितिख्याता सर्वैश्वर्य प्रदायिकेति। अयन्तु स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ गरुडलक्षणम्

पद्मपुराणे—पक्षाकारे च पङ्क्तीद्वे मध्ये लम्बाच रेखिका। गरुडः स तु विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिप्रदायक इति ॥ ब्रह्माण्डे—द्विपक्षमभ्यामुपेतं यद् गारुडं भुवि दुर्लभम्। दुर्लभं समचक्रं च कलौ कल्मषनाशनमिति ॥

धरणीधर का लक्षण—

पुराणसंग्रह में—जिस स्वरूप की शिला गोल होती है। द्वारपर चक्र रहते हैं। आकार स्थूल और सुन्दर होता है उनको सर्वयज्ञ के फलों को देने वाले धरणीधर जी जानना चाहिये। अनुक्त चक्र हैं अतः द्विचक्र के होते हैं ॥

शेषजी का लक्षण—

पद्मपुराण पर कहा गया है कि—साँप की तरह कुण्डलाकार रेखाओं की पंक्ति जिस पर दीखती है उस मूर्ति को "शेषजी" जानना चाहिये।

ब्रह्माण्डपुराण में—अशेष ऐश्वर्य को देनेवाले शेषजी वह होते हैं जिनका स्वरूप कुण्डलाकार, सर्प शरीर से घेरा गया हो।

तथाच—पृष्ठ से लेकर शिर तक चूड़ी के आकार की सुबर्ण जैसी तीन चार या पाँच रेखा से वेष्टित हो, श्याम वा नील श्वेत किसी वर्ण के समान चक्रवाले हो तो वह मूर्तिदेव सर्वैश्वर्य के दाता शेषजी होते हैं ॥ द्विचक्री० ॥

गरुड़जी का लक्षण—

पद्मपुराण में—पक्ष याने पाँख वा डैने के आकार की दो पंक्ति हों, मध्य में एक लम्बी रेखासी दीखती हो तो उस मूर्ति को भुक्तिमुक्ति के दाता गरुड़जी जानना चाहिये ॥

ब्रह्माण्डपुराण में—

दो पक्ष (पङ्ख) से युक्त गरुड़मूर्ति का पाना पृथ्वी पर दुर्लभ है, समानचक्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा—कल्मषौघविनाशी स्याद्वलयाकाररेखया। सुवर्णनिभयाद्वित्रिचतुष्टयसमेतया ।। संयुक्ता शुभदात्रीस्या च्छ्यामा नीला च पीतकेति । एवं भूता या शिला स कल्मषौघविनाशी गरुड इत्यर्थः ।। तथा—द्विपक्षाभ्यामुपेतं च द्वारेङ्घ्री विषमौस्थितौ । स्थूलं चिन्हं मुखे यस्य कलशेन समन्वितम् ।। वैनतेयं वीजानीयाल्लाञ्छनैस्तु सुलाञ्छितम् । इति द्वाराधः प्रदेशे रेखानिर्मितं विषमसंस्थानकमङ्घ्रिद्वयं यस्येत्यर्थः ।

पद्मपुराणे—

पद्माकारे तु पङ्क्ती द्वे मध्ये दीर्घा च रेखिका । गरुडः सतु विज्ञेय इति । अस्याप्यनुक्तसंख्याकत्वात्पूर्ववद् द्विचक्रत्वमेव ।

अथ विष्वक्सेन लक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अष्टचक्रश्चतुर्वक्त्रशिरश्चक्र समन्वितः। श्वेतरेखा समायुक्तः कृष्णवर्णः स्थिरासनः ।। शङ्खचक्रगदायुक्तो धनुर्बाणसमन्वितः ।

की भी पाना तो और भी दुर्लभ है, क्योंकि वह कलियुग में पापों का विनाश करने वाली होती है तथा--चूड़ी के आकार की सुवर्णसदृश दो, तीन वा चार रेखा से युक्त, पापपुञ्ज का विनाश करनेवाली श्याम, नील वा पीतवर्ण की शिला गरुड़मूर्ति होती है । ऐसी उक्त शिला पापपुञ्ज के नाशक गरुड़जी हैं, ऐसा भाव है ।

तथा—जो दो पङ्ख से युक्त हो, जिसके द्वारभाग में दोनों पैर समरूप से स्थित न हों, स्थूल चिन्ह भी मुँह पर कलश के साथ दिखाई देता हो और चिन्हों से भी चिन्हित हों तो उनको गरुड़ जी जानें। मतलब ऐसा है कि द्वार के पिछले भाग में रेखाओं से बने हुए विषमरूप से स्थित हैं दोनों चरण जिसके वह गरुड़जी हैं इत्यादि ॥

पद्मपुराणमें—

पंख की आकृति की दो पंक्ति हो, मध्य भाग में दीर्घ रेखा एक हो तो वह गरुड़ जी हैं । पूर्ववत् द्विचक्री० ॥

विष्वक्सेन का लक्षणं—

पुराणसंग्रह में ऐसा वचन आया है कि—

श्रीमान् विश्वक्सेनजी वह कहाते हैं जिनकी मूर्तिपर, शिर में एक तथा और भी आठ तो चक्र ही होते हैं, मुख चार होते हैं, सुफेद रेखा रहती है, काला वर्ण होता है, आसन स्थिर होता है, शङ्ख, चक्र, गदाएँ रहती हैं एवं धनुर्बाण और यज्ञसूत्र (जनेऊ) के चिन्ह भी होते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यज्ञसूत्रधरः श्रीमान् विष्वक्सेनः प्रकीर्तित इति । स्कन्दपुराणे—पद्मकोश-प्रतीकाशो नवचक्रसमन्वितः । विश्वक्सेनस्तु भगवानश्वमेधफलप्रद इति । अयं नवचक्रः स्पष्टएव ।

अथ सभेदसुदर्शनमूर्त्तिलक्षणानि

पुराणसंग्रहे—

सुदर्शनं त्रिधा ज्ञेयं लक्षणान्तरभेदतः ।
शुद्धं सुदर्शनं चैव तथोभयसुदर्शनम् ॥

सुदर्शनं समाख्यातं ज्ञेयं लक्षणकोविदैरिति । तत्रादौ शुद्धसुदर्शन-लक्षणम् । पुराणसंग्रहे—एकचक्रं शिरोदेशे पार्श्वेशङ्खादिचिह्नितः । असौ सुदर्शनो देवः पूजनात्सर्वकामद इति ॥ पद्मपुराणे—अतसीपुष्पसङ्काशो विन्दुना परिशोभितः । सुदर्शनस्मृतो देवः श्यामो भूतिसुखप्रद इति ॥ ब्रह्मपुराणे—सुदर्शनस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः । वामपार्श्वे गदाचक्रं रेखा चैव तु दक्षिणे ॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—एकचक्रं शिरोदेशे कृष्णवर्णमुखस्तथा । सुदर्शनः सविज्ञेयः सर्वपापप्रणाशन इति । पद्मपुराणे—चक्राकारेण पङ्क्तिः सा

स्कन्दपुराण में—

कमल के गट्टे के सदृश प्रभावान्, नौ चक्रों से युक्त विष्वक्सेनजी होते हैं । भगवान् विष्वक्सेन जी अश्वमेध यज्ञ का फलप्रदान करनेवाले होते हैं ।

॥ नवचक्रमूर्ति ॥

सुदर्शन मूर्ति के भेद और लक्षण—

पुराण संग्रह पर—लक्षण के जाननेवाले इस प्रकार सुदर्शनजी को जानें। जैसे कि सुदर्शनजी अन्योन्य लक्षणों से तीन प्रकार के होते हैं, एक तो शुद्ध और दो उभय प्रकार के । उनमें पहले शुद्ध का लक्षण-पुराण संग्रह पर ही कहा है कि पूजा करने से सुदर्शनजी सभी कामनाओं के दाता होते हैं, जिनके शिरोभाग में एक चक्र होता और पार्श्व में शंखादिक चिह्न होते हैं ।

पद्मपुराण में कहा है कि—

अलसी के फूल के सदृश वर्णवाले, बिन्दुसे शोभित, साँवले रङ्ग के, ऐश्वर्य और सुख के प्रदान करनेवाले भगवान् सुदर्शनदेव कहे गये हैं ।

ब्रह्मपुराण में—सुदर्शनदेव श्यामवर्ण के, महान् कान्तिमान् होते हैं । उनके बाम भाग में गदा और चक्र होते हैं, तथा दक्षिण में रेखा होती है ।

ब्रह्मपुराण का वचन है कि—

जिनके शिरपर एक चक्र हो तथा काला मुँह हो तो उनको सर्वपाप के ध्वंसकारी सुदर्शनजी जानना चाहिये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र रेखामयी भवेत्। स सुदर्शन इत्येवं ख्यातः पूजाफलप्रद इति। तथा—पद्माकारं वृत्तचक्रं निम्ननाभि सुदर्शनम्। सुदर्शनं तथा ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनमिति ॥ तथा—पद्माकारं लिखेच्चक्रं निम्ननाभिसुशोभितम्। यतिभिः पूजनीयं तदेकचक्रं सुरक्तकमिति ॥ तथा—सुदर्शनं कृष्णवर्णमुत्तमं परिकीर्तितम्। मधुवर्णं मध्यमं स्यात्कपिलन्तु परित्यजेदिति ॥ तथा—नागाङ्कितं कृष्णवर्णं बिन्दुना परिशोभितम्। स्वर्णरेखासमायुक्तं नराणां भुक्तिमुक्तिदमिति ॥—अतिसूक्ष्मं श्यामवर्णं सव्याकारं सितं मुखे। कोमलं वर्तुलं स्निग्धं नराणां भुवि दुर्लभम् ॥ तथा—मधुवर्णं तथा रूक्षं रक्तकेसरमण्डितम्। सच्छिद्रं वृत्तहीनञ्च गृहस्थः परिवर्जयेदिति ॥ अयमेकचक्रः स्पष्टएव।

अथोभयसुदर्शनलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—एकचक्रंशिरोभागे तथाधोप्येकचक्रकम्। श्यामवर्णं सूक्ष्मरूपं नागाङ्केनापि चिह्नितम्। सुदर्शनं चोभयाख्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ एतं यः पूजयेन्नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयादिति। अयं तु द्विचक्रस्पष्ट एव।

पद्मपुराण में कहा है कि पूजा करने से सभी फल के देनेवाले सुदर्शन जी ऐसे होते हैं जिनकी रेखारूप चक्राकार हो और जहाँपर आकार रेखास्वरूप हो।

तथा—पद्माकार, वर्तुलचक्र, निम्ननाभी, सुदर्शन (चक्र) धारी, सर्वपाप विनाशकारी सुदर्शन ही होते हैं। तथा—लाल वर्ण के एक ही चक्रवाले सुन्दर और निम्न नाभिवाले सुदर्शनजी संन्यासी से मात्र पूजित होने चाहिये। तथा—सुदर्शन जी जो काले वर्ण के कहे गये हैं यह उत्तम हैं, मधुवर्ण के मध्यम होते हैं और कपिल वर्ण के अधम अतः उनका परित्याग करना चाहिये। तथा सर्पाङ्कित कृष्णवर्ण के बिन्दु से शोभित और सुवर्णाकार रेखा से युक्त हों तो मनुष्यों के लिये भुक्तिमुक्ति के दाता होते हैं। तथा–

अति सूक्ष्म, श्यामवर्ण के, मुँहपर बायें भाग में श्वेत आकारवाले, कोमल, गोल और चिकने स्वरूप के सुदर्शनजी पृथ्वीपर प्राप्त करना मनुष्यों के दुर्लभ हैं। तथा—मधुवर्ण के रूक्ष, लाल केसर से मण्डित, सछिद्र, और वृत्तहीन उक्तमूर्ति की पूजा गृहस्थ न करें। एक चक्र० ॥

उभय सुदर्शन का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—शिरपर एक चक्र और अधोभाग में एक हो, वर्ण श्याम हो, सूक्ष्म हो, चिह्न नाग का हो तो वह देवताओं के भी दुर्लभ उभय सुदर्शन कहे जाते हैं। जो इनकी नित्य ही पूजा करता है वह सभी कामनाओं का प्राप्त करता है। द्विचक्री० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ समसुदर्शनलक्षणम्

तत्रैव--द्वाभ्यां शिरसि चक्राभ्यां पङ्क्त्याकारेण भूषितः। श्यामवर्णः पार्श्वभागे गदाशङ्खादिसंयुतः। समसुदर्शनोदेवो भूतलेऽतीव दुर्लभः। पूजनीयः सदा सद्भिर्भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति। अयमपि स्पष्ट एव द्विचक्रः।

अथ योगराज़लक्षणम्

विष्णुरहस्ये—

वामाङ्गे पुष्कलं स्निग्धं द्विचक्रं च सुसूक्ष्मकम्। अयमपि स्पष्ट एव द्विचक्रः। (?) योगराजं विजानीयाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् (?)

अथ वटपत्रशायिनो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—वटपत्रशायी भगवान् वर्त्तुलोऽत्यन्तशोभनः। क्षीरबुद्बुदवत्तार्क्ष्य नीलश्वेतविमिश्रितः। वक्त्रस्य वामतः शङ्खो दक्षिणे पद्ममेव च। वदनैकं मध्यदेशे चतुश्चक्रस्त्रिबिन्दुक इति।

अयं स्पष्ट एव चतुश्चक्रः।

अथ नरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—नरमूर्त्तिस्तु भगवानतसीकुसुमप्रभः। एकचक्रसमोपेतो ब्रह्मसूत्रश्च पार्श्वके॥ इति। अयन्तु स्पष्टएवैकचक्रः।

समसुदर्शन का लक्षण—

उसी पर—(पुराणसंग्रहमें) शिर पर पंक्तिके आकार के द्विचक्रों से भूषित, श्यामवर्ण, पार्श्व में गदाशंखादि से युक्त हों तो पृथ्वी पर अत्यन्त दुर्लभ सुदर्शन देव कहलाते हैं, सज्जनो को उनकी पूजा करनी चाहिये क्योंकि वह भुक्तिमुक्ति फलों के प्रदान करनेवाले हैं॥ यह भी द्विचक्र०॥

योगराज का लक्षण—

वामाङ्ग उत्तम (अथवा कमल) स्निग्ध एवं सूक्ष्म द्विचक्रसे युक्त स्वरूप हो तो भुक्तिमुक्ति के दाता योगराज कहलाते हैं। श्लोकार्ध को लुप्त देखकर यहाँ पर पूरा किया गया है (?)। द्विचक्री०॥

वटपत्रशायी का लक्षण--

गरुड़ जी! वटपत्रशायी भगवान् अत्यन्त सुन्दर गोलाकार दूध की फेन के बुलबुले के जैसे नील और श्वेत वर्ण से संयुक्त होते हैं, वदन के वाम भाग में शंख, दक्षिण भाग में कमल, मध्यभाग में एक मुख, चार चक्र और तीन विन्दुएँ, ये सब उनके चिन्ह होते हैं। चतुश्चक्री।

नर का लक्षण—

नर मूर्ति के भगवान् नीलवर्ण के अर्थात् तिस्सी के फूल सदृश एक चक्र से युक्त, पार्श्व में ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) धारण किये होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ हंसलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—हंसस्तु धनुराकारो नीलश्वेतविमिश्रितः। चक्रपद्मसमोपेतः केवलं मोक्षदो भवेदिति। गरुडपुराणे—हंसः शङ्खाकृतिश्चैव नाभिचक्रस्तथोन्नतः। दक्षिणे धनुराकारो वामे कुमुदपुष्पकम्। दृश्यते भिन्नवर्णस्तु मोक्षवर्गप्रदः शुभ इति। अस्य नाभिचक्रत्वकथनात् पूर्ववत् त्रिचक्रत्वम्।

अथ परमहंसलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे-परहंसः खगेशान शिखण्डिगलसन्निभः। स्निग्धश्चायतवृत्तश्च वर्त्तुलद्वारसंयुत इति॥ तथा—बिलमध्ये तथा चक्रे दृश्यते द्युतिशोभने। चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे द्युमणिर्भास्वरो भवेत्। वराहरेखा तद्वामे दृश्यते विनतासुत। मूर्त्तिः परमहंसाख्या चतुर्वर्गफलप्रदेति। अयं द्विवचनात् स्पष्ट एव द्विचक्रः।

हंस का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—हंसदेव धनुषाकार, नीलश्वेतवर्णों से मिश्रित, चक्र और कमल से संयुक्त होते हैं। वह केवल मोक्षदायी हैं।

गरुड़पुराण में कहा है कि—

हंसदेव का स्वरूप शंखाकार का होता है, नाभि पर चक्र और मूर्ति उन्नत होती है, दाहिने भागमे धनुष का आकार और बाये में कुमुदपुष्प होता है वर्ण कई दीखते हैं एवम् पूजा से मोक्षफल प्राप्त होता है। नाभि पर भी चक्र का विधान है अतः पूर्ववत् इनको त्रिचक्रस्वरूप जानना चाहिए।

परमहंस मूर्तिका लक्षण—

हे गरुड़जी ! परमहंस देव मोर के कण्ठ सदृश, स्निग्ध, दीर्घवृत्त वर्तुलद्वार से युक्त होते हैं।

तथा—

और छिद्र के मध्यभाग पर सुन्दर दो चक्र दीखते हैं, चक्र के दक्षिण पार्श्व में चमकदार सूर्य नारायण होते हैं, उसकी बायी ओर वराह की रेखा दीखती है, हे वैनतेय ! इस प्रकार परमहंस नाम की मूर्त्ति चतुर्वर्ग अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफल को देती है॥

"चक्रे" इस द्विवचन पदसे दो चक्र की मूर्ति जाननी चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ दत्तात्रेयलक्षणम्

पुराणसङ्ग्रहे—पीतोऽरुणोसिताभश्च ह्रस्वपृष्ठोन्नतो भवेत्। अक्षमालाकृतिः पृष्ठे दत्तात्रेयः शुभप्रद इति ॥ तथा—कृष्णो रक्तश्च पीतश्च दत्तात्रेयाभिधो भवेत्। इति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक एव।

अथ त्रिमूर्त्तिलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—ऊर्ध्वाधस्तु त्रिवदनः षट्चक्रःश्यामलाङ्गधृक्। त्रिमूर्त्तिरिति विख्यातः सर्वसौभाग्यदायक इति ॥ वामनपुराणे—

चक्रत्रयसमेता वा त्रिमूर्त्तिः स्याच्छुभप्रदेति। अयं स्पष्टएव षट्चक्रस्त्रिचक्रश्च।

अथ श्रीमूर्तिलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अधोऽधस्तात्त्रिवदनः षट्चक्रः श्यामलो विभुः। श्रीमूर्त्तिलक्षणं प्रोक्तं सर्वसौभाग्यदायकमिति ॥ स्कान्दे—शङ्खचक्रादिकमलकमण्डलुनिशाकरैः। मुखत्रयेण संयुक्तः श्रीमूर्त्तिस्तु शुभप्रद इति ॥ अयं स्पष्टएव षट्चक्रः।

दत्तात्रेय का लक्षण—

पुराणसंग्रह में प्रमाण मिला है कि दत्तात्रेय-मूर्ति शुभदायक होती है। उसके पहचान ऐसे हैं कि पीला, गुलाबी वा सुफेद तो वर्ण होते हैं, पृष्ठ भाग छोटा होता है मूर्ति उन्नत होती है और पृष्ठ भाग पर रुद्राक्षमाला का जैसा आकार प्रतीत होता है। तथा—पीत रक्त वा श्वेतवर्ण के दत्तात्रेय जी कहलाते हैं। द्विचक्र० ॥

त्रिमूर्तिका लक्षण—

ब्रह्माण्ड में लिखा वचन ऐसा है कि—ऊपर और नीचे पर कुल मिलाकर तीन बदन वाले, छः चक्र और सावले अङ्गों के धारण किये "त्रिमूर्ति" नाम से प्रसिद्ध सर्वसौभाग्यदाता भगवान् होते हैं। वामन पुराण में कहा है कि—अथवा तीन ही चक्रों से युक्त भी शुभदायक त्रिमूर्ति देव कहलाते हैं। त्रिचक्री या षट्चक्री० ॥

श्रीमूर्ति का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर कहा है कि पिछले भाग पर नीचे तीन मुख हों, छः चक्र हों, श्यामल वर्ण हो तो उनको सर्व सौभाग्यदायक श्रीमूर्ति जानना चाहिये।

स्कन्द पुराणमें लिखा है—शंख, चक्र, इत्यादि कमल, कमण्डलु और चन्द्राकार वगैरह चिह्नोंके रहते त्रिमुख हों तो उनको शुभदायक श्रीमूर्ति जानना चाहिये। यह स्पष्ट ही षट्चक्रवाले हैं ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ बहुरूपीलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—अभ्यन्तरे पृथक्चक्रे बहुलास्यः समन्ततः। बहुरूपी समाख्यातः पूजितो मोक्षदायक इति॥ बहुलास्यो विस्तीर्णास्यः तस्मिन्द्विचक्रो बहिरेकचक्र एवं त्रिचक्र इत्यर्थः। बहुलास्यो मुखत्रययुक्तस्तेष्वेकैक चक्र एवं त्रिचक्र इत्यर्थो वा।

तथा—

तृतीयचक्रादारभ्य प्राक् चतुर्दशचक्रतः। पातालनरसिंहोवा बहुरूपोथवा भवेदिति॥ अयं मुखे द्विचक्रस्तृतीयचक्रादारभ्य सर्वत्र चक्रयुक्त एवं चतुर्दशचक्रतः प्राक् त्रयोदशचक्रः पातालनृसिंहलक्षणविशिष्टो बहुरूप इत्यर्थः। अस्य पूर्वोक्तानन्तलक्षणलक्षितत्वे बहुरूपानन्तसञ्ज्ञा सम्पद्यते।

अथ कपिललक्षणम्

स्कान्दे—कपिलो वर्त्तुलोऽत्यन्तस्पष्टचक्रसमन्वितः। पञ्च बिन्दुसमोपेतः परविद्याप्रदो नृणामिति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्र एव।

बहुरूपी का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराणमें—अभ्यन्तर में पृथक् पृथक् चक्र हों चारोंओर से खूब मुख छुटे हों तो पूजा से मोक्षदाता बहुरूपी देव कहलाते हैं। बहुलास्य = विस्तीर्ण वदन। भीतरी दो बाहरी एक एवं त्रिचक्री मूर्ति होती है। बहुलास्य से तीन मुख युक्त कीजियेगा तो उनमें एक-एक चक्र के हिसाब से त्रिचक्री ऐसा भी अर्थ हो सकता है। पूर्ववत् प्रत्येक मुख के दो चक्र से षट्चक्री भी जानना चाहिये॥

तथा—

तीन से लेकर चौदह चक्र पर्यन्त की मूर्तियों को पाताल नृसिंह वा बहुरूपी जानना चाहिये। यह देव मुखपर दो चक्रवाले होते हैं, तीसरे लेकर चौदह से पहले अर्थात् तेरह चक्र के पाताल नृसिंह लक्षण विशिष्ट बहुरूप कहे जाते हैं, ऐसा भाव है। इनको ही पूर्वोक्त अनन्त के लक्षण अनुसार समझा जावे तो बहुरूपानन्त संज्ञा होती है॥

कपिलजी का लक्षण—

स्कन्दपुराण का वचन है—कपिलजी गोल, अत्यन्त स्पष्ट चक्र से युक्त पाँच बिन्दुवाले परविद्या अर्थात् मनुष्यों के लिये विदेशी वा विपक्षी विद्या के दायक होते हैं। यह भी अनुक्त चक्र होने के कारण द्विचक्र हैं। कपिलजी का लक्षण समाप्त हुआ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ मुशलायुधलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—मुशलाकाररेखाभिश्चैकचक्रेण लाञ्छितः। मुशलायुध-नामास्याच्छंखचक्रगदान्वितः। पूजनाच्चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति। अयन्त्वेकचक्रः स्पष्टएव।

अथ मुरारिलक्षणम्। अयमपि द्विचक्रः।

अथ शिंशुमार लक्षणम्। ब्रह्माण्डपुराणे—शिंशुमारो दीर्घकायो बिल्वशाल्यतिगह्वरः। पुरस्तु पृष्ठभागेतु चक्रेणैकेन संयुतः॥ सर्वाधारः सविज्ञेयः सर्वसिद्धिप्रदो नृणामिति। पृष्ठभागे एकचक्रं वक्त्रेच द्वयमेवं मिलित्वा चक्रत्रयोऽयमित्यर्थः।

अथ पुण्डरीकलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—एकचक्रयुतोवक्त्रे शुक्लवर्णसमन्वितः। पुण्डरीकः समाख्यातः पूजितोऽसौ विमोक्षद इति॥ अयमेकचक्रः स्पष्ट एव।

अथ हैहयलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—गर्भागारे तु चक्रे द्वे पद्मे दक्षिणतो बहिः। पद्मपत्राकृति-

---

मुशलाऽऽयुध का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में प्रमाण मिलता है कि—मुशलाऽऽयुध नाम के भगवान शंख, चक्र और गदा से युक्त होकर मुशलाऽऽकार रेखाओं और एक चक्र से चिह्नित रहते हैं, पूजा करने से सबके लिये भुक्तिमुक्ति के दाता होते हैं। एक चक्री०॥ मुरारि का विशेष लक्षण नहीं पाया जाता अतः द्विचक्री जानना चाहिये।

शिंशुमार का लक्षण—

शिंशुमार को सर्वाधार और मनुष्यों के लिये सर्वसिद्धि के दाता जानना चाहिये, उनके लक्षण ऐसे होते हैं—शरीर दीर्घ होता है श्रीफल सदृश आकार होता है, अति गह्वर भाग दीखता है और आगे एक पीछे एक एवम् दो चक्र होते हैं। अर्थात् आगे पीछे मुख पर के सबको जोड़कर त्रिचक्र के जानना चाहिये॥

पुण्डरीक के लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर इस प्रकार कहा है—

पूजा करने से सभी (सौख्य के देनेवाले) विशेषतः मोक्ष के देनेवाले पुण्डरीक जी इस प्रकार के होते हैं, मुख पर एक चक्र होता है और वर्ण श्वेत होता है। एक चक्री०॥

हैहय के लक्षण—

गर्भ स्थान में दो चक्र बाहरी ओर दक्षिण भाग में दो पद्म अथवा पद्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वोपी हेमवर्णसमाकुलः ॥ हैहयस्तु भवेद्देवः सर्वसिद्धिप्रदायक इति। अयं द्विचक्रः स्पष्टएव।

अथ विष्णुपञ्जरलक्षणम्

पद्मपुराणे—वज्रकीटोद्भवा रेखाः पंक्तिभूताश्च यत्र वै। शालग्रामशिलाया सा विष्णुपञ्जरसञ्ज्ञितेति। एतस्य निश्चक्रत्वं स्पष्टमेव।

अथ योगेश्वरलक्षणम्।

ब्रह्माण्डपुराणे—दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामसमुद्भवम्। सच योगेश्वरोनाम ब्रह्महत्यां व्यपोहति। इति। लिङ्गं किञ्चिच्चिह्नमित्यर्थः। अयमपि निश्चक्र एव। एवमनन्तस्यानेके भेदा विश्वरूपादीनामेकैकः सुदर्शनस्य त्रयो भेदा उक्ता इत्येवमनन्तव्यतिरिक्तविश्वरूपादिमूर्त्तीनां षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति। अनन्तस्य तु यथासम्भवभेदा भवन्तीति। इतिमूर्त्तयः।

अतःपरं ब्रह्मणो मूर्त्तय उच्यन्ते तत्र चतुर्मुखलक्षणम्

पाद्मे—चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपगाः। द्वे चक्रे मध्यदेशेच याशिला स्याच्चतुर्मुखीति॥

पत्र के समान आकार और सुवर्ण वर्ण की मूर्ति हो तो वह सर्वसिद्धि के दाता भगवान् "हैहय" संज्ञक देव होते हैं। द्वि चक्रो०॥

विष्णुपञ्जर के लक्षण—

पद्मपुराण के अनुसार कहा जाता है कि—जिस पर वज्र कीट से उत्पन्न रेखाएँ श्रेणीबद्ध होती हैं इस प्रकार की शालग्राम शिला "विष्णुपञ्जर" कहलाती है। इस मूर्ति में चक्र नहीं होते हैं क्योंकि चक्र संख्या की चर्चा ही नहीं है॥

योगेश्वर का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—जिनके शिखर में शालग्राम पर उत्पन्न हुआ कुछ चिन्ह दीखता है वह योगेश्वर कहलाते हैं और वह ब्रह्महत्या को दूर करते हैं। लिङ्ग कोई चिन्ह॥ निश्चक्र०॥

इस प्रकार अनन्त के अनेकों भेद, विश्वरूपादियों के एक-एक भेद, सुदर्शन के तीन भेद बताये गये हैं। अब ऐसा जानें कि अनन्त को छोड़कर विश्वरूपादि मूर्तियोंके छेयालीस भेद और अनन्त के यथासम्भव भेद होते हैं। इति॥

अब ब्रह्माजी की मूर्तियाँ कही जाती हैं।

पद्मपुराण के अनुसार उनमें पहले चतुर्मुख का लक्षण—

जिस पर पार्श्वभाग के नजदीक ही चार रेखाएँ एवम् मध्यभाग में दो चक्र दीखते हैं उस शिला को चतुर्मुखी जानना चाहिये (चतुर्मुख = ब्रह्मा)॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्डे—

चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपतः। द्वे चक्रे मध्यदेशे च सा शिला स्याच्चतुर्मुखीति ॥ अयमपि स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ स्वयम्भूलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—स्वर्णवर्तुलरेखाभिरावृतो नीलवर्णवान्। दीर्घास्यपृथुचक्रस्तु स्वयम्भूरिति विश्रुतः॥ केवलं मोक्षफलदो ह्यर्चकस्य न संशय इति। अयमनुक्तचक्रसंख्यत्वाद् द्विचक्रः।

अथ परमेष्ठिनो लक्षणम्

पाद्मे—परमेष्ठी साब्जचक्रः पृष्ठच्छिद्रश्च विन्दुमानिति।

पुराणसंग्रहे—परमेष्ठी तु मुक्ताभश्चक्रपद्मसमन्वितः। सुवर्त्तुलस्तथा पीतः पृष्ठे च सुषिरन्तथेति॥

ब्रह्मपुराणे—परमेष्ठी लोहिताभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम्। विल्वाकृतिस्तथा रेखा सुषिरं चातिपुष्कलमिति।

विष्णुरहस्ये—दीर्घरेखा समोपेतो दक्षिणे सुषिरं पृथक्। परमेष्ठी लोहिताभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम्॥ इति।

ब्रह्माण्ड में—

जिस पर पार्श्व भाग के समीप में चार रेखाएँ दीखती हैं, और मध्यभाग में दो चक्र भी वह शिला चतुर्मुखस्वरूप की होती है। द्विचक्री०॥

स्वयम्भू के लक्षण—

सुवर्ण की गोलाकार रेखाओं से वेष्टित, नीलवर्ण, दीर्घमुख और विशाल चक्रवाले "स्वयम्भू" नाम से प्रसिद्ध हैं, वह पूजक के लिये केवल मोक्षफल को देते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह द्विचक्री हैं।

परमेष्ठी के लक्षण—

पद्मपुराण में कहा है कि--परमेष्ठी जी कमल, चक्र, पृष्ठ भाग पर सच्छिद्र विन्दुधारी होते हैं।

पुराण संग्रह में—

परमेष्ठी जी मोती के सदृश चमकते हुए चक्र और पद्म से युक्त होते हैं, आकार गोल पीत वर्ण का होता है पृष्ठ भाग में छिद्र भी होता है।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—

परमेष्ठी जी वह हैं जो लाल वर्ण के होते हैं, उनमें एक चक्र और एक कमल का चिह्न रहता है, आकृति रेखायुक्त श्रीफल सदृश की होती है, एक अत्युत्तम छिद्र भी रहता है।

विष्णु रहस्य में--दीर्घ रेखा, दक्षिण के तर्फ अलग छिद्र, लाल वर्ण, एक चक्र और एक पद्म के धारण किये परमेष्ठी जी होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैखानससंहितायाम्—परमेष्ठी तु रक्ताभश्चक्रपद्मसमन्वितः। बिम्बाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं चातिवर्त्तुलम् ।। पीतवर्णयुतो वापि भुक्तिमुक्तिवरप्रद इति । अयं स्पष्ट एवैकचक्रः ।

अथ पितामहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—पितामहश्चतुर्वक्त्रो ह्यष्टचक्रसमन्वितः। ध्वजाकारयुता रेखा दृश्यते मध्यदेशतः। पूजनीयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्च वर्तुल इति ।। अयं स्पष्ट एवाष्टचक्रः ।

अथ हिरण्यगर्भलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—हिरण्यगर्भं जानीयान्मधुपिङ्गलविग्रहम् । ईषद्दीर्घं मनोज्ञं च स्निग्धं सकलकामदमिति ।। तथा—चन्द्राकृतिं हिरण्याख्यां रश्मिज्वालां विनिर्दिशेत् । सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभनम् । इति ।। तथा—हिरण्यगर्भो भगवान् त्रिविधोऽत्र प्रदृश्यते । अमुखः स्वर्णबिन्दुश्च स्वर्णगर्भ इति क्रमादिति ।। तथा—हिरण्यगर्भो भगवान् पवित्रो भुवि दुर्ल्लभः। अंतर्ध्वनिसमायुक्तः कृष्णवर्ण सुवृत्तक इति ।। तथा—वर्त्तुलो

वैखानस संहितापर—परमेष्ठी जी तो वर्ण के लाल, एक चक्र और पद्म से संयुक्त भी होते हैं। पृष्ठ भाग बिम्ब के सदृश (लाल) होता है। खूब गोल छिद्र भी होता है, अथवा उक्त लक्षण सम्पन्न पीतवर्ण के भी होते हैं वह भुक्ति मुक्ति तथा वर प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ एकचक्र० ॥

पितामह जी का लक्षण—

पुराण संग्रह पर लिखा है कि—पितामह जी चार मुख और आठ चक्र के होते हैं। मध्य में ध्वजाकार रेखा दीखती है, स्थिर, स्निग्ध एवम् वर्तुलाकार होते हैं इनकी यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये। अष्टचक्र स्पष्ट हैं ॥

हिरण्यगर्भ का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—मधुसदृश पिङ्गल शरीरवाले, कुछ लम्बे, चिकने और सुन्दर स्वरूप को सकल कामनाओं के दाता हिरण्यगर्भ जी जानें।

तथा—चन्द्राकार कान्ति की ज्वाला होकर अति सुन्दर अतएव स्फटिक की छवि के सदृश चमकीले प्रायः सुवर्ण रेखाओं से सम्पन्न ऐसे स्वरूप को भगवान हिरण्यगर्भ जी जानें। तथा—

यहाँ पर हिरण्यगर्भजी तीन प्रकार के मालूम पड़ते हैं—अमुख १ स्वर्ण विन्दुमान् २ हिरण्यगर्भ ३ इस क्रम से भेद को जानें।

तथाच—पृथ्वी पर भगवान् हिरण्यगर्भ पवित्र और दुर्लभ हैं। भीतर से आवाज आती है, वर्णकाला और आकार गोल होता है ॥ तथा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ह्रस्ववदनो मध्यचक्रोऽतिकोमलः। श्रीवत्सकमलाकारलाञ्छनं पृष्ठपार्श्वके ॥ हिरण्यगर्भो विख्यातः पृथुनाभिसमन्वितः। हिरण्येन विमिश्रस्तु श्रीप्रदः कुलवर्द्धन इति। अयमनुक्तचक्रसंख्यत्वात् द्विचक्र एव। इति ब्रम्हमूर्त्तयः।

अतःपरं शिवस्य मूर्त्तय उच्यन्ते

तत्र शिवनाभलक्षणम्। स्कान्दे—कूर्माकृतिरधोभागे लिङ्गभागे खुरान्वितः। शिवनाभ इतिख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति॥ तथा—चक्राकारं कृष्णवर्णं सत्रिशूलं जटाधरम्। शिवनाभश्च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदमिति।

अथ सद्योजातलक्षणम्

स्कान्दे—हेमवर्णयुता हेमविन्दुभिश्च समन्विता। मस्तके गोखुरैर्युक्ता चन्द्रगङ्गा समन्विता। सद्योजाताभिधा श्रेष्ठा पुत्रपौत्रविवर्द्धनीति॥

अथ वामदेवलक्षणम्

स्कान्दे—लिङ्गशक्तौ रक्तवर्णा श्वेता चन्द्रजटायुधा। वामदेवाभिधा श्रेष्ठा गृहिभिः पूजिता सदेति॥

गोल, अल्पमुख, मध्यचक्री, अतिकोमल, पृष्ठ और पार्श्वभागमें श्रीवत्स और कमलके आकारके चिह्न और विशालनाभियुक्त होकर हिरण्यसे विशेष मिश्रित हों तो वह "हिरण्यगर्भ" नामसे प्रसिद्ध श्रीसंपत्तिके दाता सन्तानकी वृद्धि करने वाले होते हैं। द्विचक्री ब्रह्ममूर्तियां समाप्त हुईं।

अब आगेसे शिवमूर्तियाँ कही जा रही हैं—

पहले शिवनाभजीका लक्षण—स्कन्द पुराणमें कहा है कि—अधो भागपर कूर्मका आकार और लिङ्ग भागमें खुरका आकार होतो भुक्ति मुक्ति फलके देनेवाले शिवनाभ कहलाते हैं। तथा—चक्राकार, कृष्णवर्ण की त्रिशूल युक्त जटाधारी मूर्तिको सर्वकामनाओंके अनुसार फलदायक "शिवनाभ" कहना चाहिये। सद्योजातका लक्षण—स्कन्दपुराणमें कहा है कि—सुवर्ण वर्णसे युक्त और सुवर्ण ही की बिन्दुओंसे युक्त एवम् मस्तकपर गायके खुरके आकार, चन्द्रमा और गङ्गासे सुशोभित मूर्ति "सद्योजात" नामं की पुत्रपौत्रादि सन्तान की बढ़ाने वाली श्रेष्ठ कही जाती है।

वामदेव जी का लक्षण—

स्कन्द पुराणमें कहा है—लिङ्गशक्तिमें लालवर्णकी श्वेत, चन्द्रमा जटा और आयुधसे युक्त वामदेवनामकी श्रेष्ठ मूर्ति होती है, गृहस्थोंसे सदा पूज्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथाऽघोरलक्षणम्

स्कान्दे—सर्वत्र लोहिताकारा मूर्ध्नि रक्तजटा शशी। अघोरा सा परित्याज्या गृहिभिर्यतिपूजितेति ॥

अथ तत्पुरुषलक्षणम्

स्कान्दे – पूर्वे विद्युज्जटाभानुरूर्ध्वे लिङ्गजटाशशी । तत्पुरुषाभिधाना सा दुर्लभा सर्वकामदेति ।

अथेशानलक्षणम्

• स्कान्दे—क्वचित्कपिलसंयुक्ता कृष्णनीलजटेन्दुका । पार्श्वरेखासमोपेता ईशाना मुक्तिदायिकेति ।

अथ शर्वलक्षणम्

स्कान्दे—द्विलिङ्गोवा त्रिलिङ्गोवा चतुःपञ्चादि लिङ्गवान् शर्वदेवः समाख्यातो देवो देवत्वदायक इति ॥ तथा—स च शङ्करनामास्याद्देवो दिव्यफलप्रद इति । तथा—लिङ्गैः पञ्चभिरालीढा षड्भिर्वा सप्तभिस्तथा । तत्तन्मूर्त्तिफलं पुण्यं मया वक्तुं नपार्यते । शङ्करेति समाख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदेति ।

अघोर का लक्षण—

स्कन्दमें—सर्वत्र लोहितवर्णकी शिर पर लाल जटा और चन्द्रमासे युक्त "अघोर" नामकी मूर्ति होती है । गृहस्थ लोग उसे त्याग देवें क्यों कि वह संन्यासियों से ही पूज्य होती है ।

तत्पुरुषजी का लक्षण—

स्कन्द पुराणका वचन है कि— वैसागमें विद्युज्जटा और सूर्य हों ऊर्ध्वभागमें लिङ्ग, जटा और चन्द्रमा हों तो वह तत्पुरुष संज्ञक मूर्ति दुर्लभ और सर्वकामदा होती है ।

ईशानका लक्षण—

स्कन्दपुराणमें लिखा है कि कहींपर कपिलवर्णकी होती हुई कृष्ण तथा नील वर्णकी भी हो, चन्द्रमा और पार्श्वभागमें समान रेखा से भी युक्त हो तो वह मुक्तिदायिनी ईशानमूर्ति कहलाती है ।

शर्वका लक्षण—

स्कन्दपुराणका वाक्य है कि—द्विलिङ्ग, त्रिलिङ्ग वा चतुर्लिङ्ग, पञ्च इत्यादि लिङ्गवान् हों तो वह देव देवत्वके दायक "शर्व" कहलाते हैं ॥ तथा—उन्हीका पर्यायवाचक नाम शङ्कर भी है वह देव दिव्यफलदायक होते हैं । अपि च—पाच, छः वा सात लिङ्गोंसे संयुक्त उन उन मूर्तियों का फल कहाँतक वर्णन किया जावे मुझसे भी कहते पार नहीं किया जा सकता है । वह भुक्ति मुक्तिको देने वाली शङ्करमूर्ति कही जाती है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ चन्द्रशेखरलक्षणम्

स्कान्दे—पञ्चवक्त्राङ्कितो देवो रौप्यवर्णः स्थिरासनः। चन्द्रशेखरको ज्ञेयो महाभयविनाशन इति ॥ विष्णुरहस्ये—पाशाङ्कुशाङ्कितं देवं नीलवर्णसमन्वितम्। भवदेवं विजानीयादचलां श्रियमाप्नुयादिति ॥

एताः सर्वा अपि शिवमूर्त्तयो निश्चक्रा एव भवन्ति। तत्र चिन्हातिरिक्त चक्रसद्भावे प्रमाणाभावादिति।

अथ हरिहरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—चक्रद्वयसमोपेत चक्रद्वययुतोऽपि वा। शिवनाभियुतो मूर्ध्नि पृष्ठेवापि तथैव च ॥ एतं हरिहरं विद्यात्सुखसौभाग्यदायकमिति।

तथा—

चतुश्चक्रो हरिहरो द्विमुखोर्ध्वं तथाप्यधः। विनश्यन्ति गृहस्थानां गृहं क्षेत्रं धनं कुलमिति ॥ एतल्लक्षणलक्षितएव विरुद्धो नान्य इति ॥ विष्णुरहस्ये—मधुवर्णाश्चातिसूक्ष्मो मध्यचक्रश्च शोभनः। चन्द्रबिम्बान्वितः स्निग्धः सस्याद्धरिहरो विभुरिति। अयं द्वित्रिचतुश्चक्रः स्पष्ट एव।

चन्द्रशेखरजीका लक्षण—

स्कन्दपुराण पर—पाँच मुखके चिह्न वाले, रौप्यवर्ण के स्थिरासन देव चन्द्रशेखरजी कहलाते हैं वह महाभयके विनाशकारी होते हैं। विष्णुरहस्यपर—पाश और अङ्कुशसे अङ्कित नीलवर्ण वाले देवको भवदेव (चन्द्रशेखर) जाने। मनुष्य उनकी पूजासे अचला लक्ष्मीको प्राप्त करता है। ये सभी शिवमूर्तियाँ निश्चक्रही होती हैं क्योंकि चिह्न (लिङ्ग) के सिवा चक्रोंके अस्तित्वमें कोई प्रमाण नहीं पाया जाता है।

हरिहरका लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराणमें कहा है कि—समान दो चक्र हों वा जैसे तैसे दो चक्रसे युक्त हो, पृष्ठ या शिर पर शिवनाभिसे भी युक्त हो तो इस मूर्तिको सुखसौभाग्यदायक भगवान् हरिहर जाने ॥ तथा—

चतुश्चक्रके भी हरिहर होते हैं नीचे और ऊपर करके दो मुख होते हैं ऐसी मूर्तिकी पूजा करनेसे गृहस्थोंके घर, खेत, धन, कुल सब नाश हो जाते हैं ॥ अतः इस लक्षणसे सिद्धमूर्ति ही गृहस्थोंकी अपूज्य है सब नहीं ॥ विष्णुरहस्यमें कहा है कि—मधुवर्णके, अत्यल्प, मध्यचक्रवाले चन्द्रबिम्बसे युक्त होते हुए, सुन्दर स्निग्धस्वरूपके हों तो वह सर्वव्यापी "हरिहर" भगवान् हैं। यह मूर्ति त्रिचतुश्चक्रकी भी होती है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ सूर्यलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—बाह्ये वाभ्यन्तरेवापि चक्रद्वादशसंयुता। सूर्यमूर्त्तिरितिख्याता सर्वव्याधिविनाशिनी॥ इति। स्कान्दे—षड्मुखं वर्त्तुलाकारं चक्रद्वादशसंयुतम्। शङ्खचक्रगदाखड्गरथचिह्नेन चिह्नितम्। कृष्णवर्णसुशोभाढ्यं रक्तरेखासमन्वितम्। सूर्यदेवं च विज्ञेयं सर्वकालफलप्रदमिति॥

वैखानससंहितायाम्—

अष्टचक्रश्चतुश्चक्रः शंखचक्रसमन्वितः।
स्वर्णरेखासमायुक्तः सूर्यदेव उदाहृतः॥ इति

अयं स्पष्ट एव द्वादशचक्रः।

अथ धर्मराजलक्षणम्

विष्णुरहस्ये—त्रिकोणस्तु भवेद्योवै चक्रं यत्र नदृश्यते। धर्मराजस्तु स प्रोक्तः शोकसन्तापकारकः॥ इति। चक्रं न दृश्यते गूढचक्रत्वात्। एतस्यानुक्तचक्रसंख्याकत्वाद् द्विचक्रत्वम्।

अथ गणेशलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—शुण्डादण्डेन दन्ताभ्यां शोभनाभ्यामलङ्कृता। एकेन

सूर्यनारायणका लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराणपर—बाहर वा भीतरकी ओर हो, बारह चक्रोंसे युक्त मूर्ति हो तो वह सर्वव्याधिके विनाशकारी सूर्यनारायण कहलाते हैं॥ स्कन्द पुराणमें छः मुखके गोलाकार बारह चक्रोंसे युक्त, कालावर्ण और लाल रेखासे शोभित शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, और रथके चिह्नवाले, सभी कामनाओंके फल देनेवाले भगवान् सूर्यनारायण कहलाते हैं। (स्वरूपशब्दमभिप्रेत्य क्लीबत्वम् सूर्यदेवमित्यादौ अर्श आद्यचा सिद्धम्, आहुरित्यस्याध्याहारो वा)॥ वैखानस संहीता पर—आठ + चार = बारह चक्रवाले सुवर्ण रेखा और शङ्ख चक्रसे युक्त हों तो सूर्यदेव कहे जाते हैं। सूर्यमूर्ति पर बारह चक्र होते हैं॥

धर्मराजका लक्षण—

विष्णु रहस्यपर—जो त्रिकोणाकार है जिस पर चक्र नहीं दीखता है उस मूर्तिको शोक सन्तापकारी धर्मराज जानना चाहिये। चक्र इसलिये नहीं दीखता कि वह अतिसूक्ष्म वा गुप्त रहता है। द्विचक्री०॥

गणेशजीका लक्षण—

पुराण संग्रहका वचन है कि, एक लम्बा सूँड़ और दो सुन्दर दाँत हों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाऽथ दन्तेन रक्तबिन्दुभिरन्विता । पार्श्वभागैकवक्त्राच चक्राभ्यां शोभिता च या । गणेशमूर्तिः सा ज्ञेया विघ्नाघौघविनाशिनीति ॥ तथा—पूर्वलक्षण-संयुक्ता श्यामा रक्ताथवा शुभा । एतां यः पूजयेन्नित्यं तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ विघ्नाः सपदि लीयन्ते ह्यन्ते मोक्षो भवेद् ध्रुवमिति । अयं स्पष्ट एव द्विचक्रः ।

अथ कुण्डलिनीनां लक्षणानि

ताश्च वैष्णवशैवादिभेदेन अनेकविधा भवन्ति । पुराणसंग्रहे—केशराढ्या शिरोभागे मध्येगर्तं भुजङ्गवत् सार्द्धत्रिवलयाकाररेखया लाञ्छिता तथा ॥ श्यामवर्णशिला या तु विष्णुकुण्डलिनी मता । शंखचक्रादिचिह्नैस्तु वक्त्रैकेन च संयुता । प्रसुप्तभुजगाकाररेखया वक्त्रमध्यके ॥ शोभिता या शिला श्यामा विष्णुकुण्डलिनी हि सा । अस्याः सम्पूजनान्मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ त्रिशूलैः केशरैर्वापि या शिला शोभिता भवेत् । वक्त्रेवा गर्तमध्येवा वलयाकाररेखया ॥ सार्द्धत्रिवलियुक्ता या प्रसुप्तभुजगेन्द्रवत् ।

अथवा एक ही दाँत और लाल बिन्दुसे शोभित और पार्श्वभाग पर एक मुख हो वह भी चक्रसे शोभित हो तो उस मूर्तिको विघ्नोंके समूहको नाश करने वाले गणेशजी जानना चाहिये। तथा—पूर्वोक्त लक्षणसे सम्पन्न श्याम वा लाल वर्णवाली श्रीगणेश-मूर्ति शुभ होती है। जो नर इसकी नित्यपूजा करता है उसकी लक्ष्मी स्थिर रहेगी विघ्न वगैरह तत्काल नाश हो जाते हैं और निश्चय ही अन्त कालमें मोक्ष होगा।

॥ द्वि चक्री ॥ गणेशजीके लक्षण समाप्त हो गये ॥

अब कुण्डलिनियोंके लक्षण बताये जाते हैं—

कुण्डलिनियाँ शैव और वैष्णवके भेदसे कई तरहकी होती हैं ॥

पुराणसंग्रहका वचन है कि—शिरोभागमें केशर हो, मध्यभागमें सर्पाकार की गर्त (गड़ाहा) हो, अर्द्धभाग त्रिवलयाकार रेखासे चिन्हित हो तथा श्यामवर्ण शिला हो तो वह विष्णु कुण्डलिनी कहलाती है वलय = चूड़ी। एकमुख और शंख चक्रादि चिह्नोंसे युक्त, मध्यभागमें सोते हुए सापके आकारकी रेखासे शोभित और श्यामवर्णकी जो शिला होती है वह "विष्णु कुण्डलिनी" होती है। इसकी पूजा करनेसे मनुष्य भुक्ति-मुक्तियों का लाभ करता है।

शिव कुण्डलिनीके लक्षण—

जटा (केशर) वा त्रिशूलसे शोभित मुँह वा गर्तके मध्यभागमें वलयाकार रेखा और जैसे कि सोता हुआ साँप हो तदाकार सार्द्धत्रिवलीसे संयुक्त उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तन्मध्ये त्वेकलिङ्गेन त्रिभिर्वा भूषिता भवेत् ।। श्वेतबिन्दुभिराकीर्णा शिवकुण्डलिनी तु सा ।। यस्तु पूजयते नित्यं शिवकुण्डलिनीं नरः । यावज्जीवं सुखं भुक्त्वा सोंते सायुज्यमाप्नुयात् ।।

तथा—गर्तेवा वक्त्रमध्ये वा योन्याकारेण रेखया। योनेरुपरि मध्ये वा कुण्डलीभूतसर्पवत् ।। अर्द्धाधिकत्रिरेखाभिर्भूषिता या शिला शुभा । शक्तिकुण्डलिनी सातु देवानामपिदुर्लभा ।। शक्तिकुण्डलिनीं देवीं नित्यं यः पूजयेन्नरः । इन्द्रादिदुर्लभान् भोगान् भुक्त्वा निर्वाणमाप्नुयात् ।। ब्रह्मादिदेवशक्तीनामानन्त्याच्चखगेश्वर । शक्तिकुण्डलिनीभेदा ह्यनन्ताः सम्भवन्तिहि ।। तत्तच्चिह्नेन साज्ञेया सर्वलक्षणकोविदैः । गर्तेवा वक्त्रमध्येवा दन्तः शुण्डाथवा भवेत् ।। पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्ता गाणेशीयन्त्र सा भवेत् । सूर्यमण्डलयोगेन सौरीज्ञेया विचक्षणैरिति । एताः सर्वा अपि कुण्डलिन्यो निश्चक्रा एव भवन्ति । इति सर्वकुण्डलिनीनां लक्षणानि ।

त्रिवलीके बीचमें एक वा तीन लिङ्गोंसे भूषित एवम् श्वेतबिन्दुओंसे व्याप्त जो शिला है वह "शिव कुण्डलिनी" कहलाती है । जो मनुष्य शिवकुण्डलिनीकी नित्य पूजा करता है वह आजीवन सुख भोग करके अन्त कालमें सायुज्य गति को प्राप्त होता है ।।

शक्तिकुण्डलिनीका लक्षण—

गर्त वा मुखके बीचमें योनिके आकारकी रेखा और उस योनिके ऊपर वा बीचमें सर्पकी तरह कुण्डलाऽऽकार साढ़े तीन रेखाओंसे भूषित जो शुभ शिला है वह देवताओंसे भी दुष्प्राप्य "शक्ति कुण्डलिनी" होती है। जो नर नित्य शक्तिकुण्डलिनी देवीकी पूजा करता है वह इन्द्रादियोंके लिये दुर्लभ भोगोंका भोग करके मोक्ष हो जाता है ।। हे गरुड़जी ! ब्रह्मादिक देवताओंकी शक्तियाँ अनन्त होती हैं इसलिये शक्तिकुण्डलिनियोंके भेदोंका अन्त न होना सम्भव है ।।

उन उन (देवताओंके आकार सदृश) चिन्हसे पता लगाकर लक्षणके ज्ञाता लोग उन उन नामकी देवशक्ति (कुण्डलिनी) का पहिचान करें ।

जैसे गणेश शक्ति—गर्त वा मुख के अन्दर दाँत या सूढ़ होकर पूर्वोक्त लक्षण संयुक्त हो तो उसे गणेश कुण्डलिनी जानना चाहिये। एवम् सूर्य मण्डल से युक्त हो तो सूर्य सम्बन्धी कुण्डलिनी होती है ।

इसी तरह विद्वान लोगोंको चाहिय कि तत्तद्देवकुण्डलिनियोंका पता लगा लेवें ।। ये सभी कुण्डलिनियाँ निश्चक्र होती हैं ।।

कुण्डलिनियों के लक्षण समाप्त हो गये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं मत्स्यादिदशमूर्तीनामेकोनत्रिंशल्लक्षणानि तथा केशवादिचतुर्विंशतिमूर्त्तीनामेकसप्ततिस्तथानन्तादिमूर्त्तीनां सप्तचत्वारिंशद् ब्रह्मणः पञ्च शिवस्य सर्वशङ्करसञ्ज्ञकमूर्त्योर्द्वित्वविवक्षया दश हरिहरसूर्यधर्मराजगणेशानामेकैकं कुण्डलिनीनां पञ्चेत्येवमेकसप्तत्यधिकशतसङ्ख्यकानि लक्षणानि वृत्तानीति ।

अथ पुनरेतासां मूर्त्तीनां सुलक्षणानि दुर्लक्षणानि च विविच्यन्ते ।

विष्णुरहस्ये—ब्रह्मोवाच । भगवन्देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । संशयं मे समुत्पन्नं छेत्तुमर्हस्य शेषतः ॥ शालग्रामं तु यत्पुण्यं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्र तिष्ठति विश्वात्मा सर्वदेवनमस्कृतः । तत्रोत्पन्नाः स्वयं बिम्बाः सूक्ष्माः सूक्ष्मतरास्तथा ॥ प्रादुर्भावैश्च विविधैर्लाञ्छनैश्च समन्विताः । अर्थदाः कामदाश्चैव धर्ममोक्षप्रदायकाः ॥ शस्ता अशस्ताः किम्भूता एतदाख्यातुमर्हसि । श्रीभगवानुवाच । शृणु ब्रह्मन् ! प्रवक्ष्यामि शालग्रामे स्थितं हरिम् । हरिस्तत्रस्थितो नित्यं प्रादुर्भावैरनेकधा ॥ लाञ्छनैर्विविधाकारैर्लाञ्छितं यच्च दृश्यते । चक्राङ्कितं हरेश्चापि शालग्रामस्य लक्ष-

---

इस प्रकार से मत्स्यादि दश मूर्तियों के उनतीस तथा केशवादि चौबीस मूर्तियों के एकहत्तर, अनन्तादि मूर्तियों के सत चालीस, ब्रह्माजी के पाँच, शिव और सर्वशङ्कर मूर्तिकी द्वित्वपरक विवक्षासे दश और हरिहर, सूर्य, धर्मराज एवम् गणेशजी के एक एक, अपि च कुण्डलिनियों के पाँच, इन सबको इकट्ठे जोड़कर कुल एकसौ एकहत्तर १७१ मूर्तियों के लक्षण समाप्त हो गये ॥

अब फिर से उन उक्त मूर्तियों के सुलक्षण और दुर्लक्षणों का विचार किया जाता है ।

विष्णुरहस्य पर—

भगवान् ब्रह्माजी ने कहा कि हे शङ्खचक्रगदाधर, देवदेवेश, भगवन् ! मुझे सन्देह हो रहा है उसे सम्पूर्ण रूपसे आप निवारण करें । शालग्राम नामक पुण्यक्षेत्र तीनों लोकमें प्रसिद्ध है, वहाँ पर सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत विश्वात्मा भगवान स्थित हैं । उस जगह पर अनेकों अवतार और चिह्नोंसे युक्त होकर स्वयम् भगवानके सूक्ष्मातिसूक्ष्म बिम्ब उत्पन्न हुए हैं ये सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके दायक हैं, किन्तु योग्य अयोग्य क्या कैसे हैं ? आप इस बात का वर्णन करें। श्रीभगवानजीने कहा, ब्रह्मन् ! सुनिये—शालग्रामपर्वत पर अवस्थित हरि भगवानका मैं वर्णन करूँगा ! भगवान हरि उस स्थान पर कई अवतारोंसे रहते हैं । जो अनेकों चिह्न और आकारोंसे अङ्कित दीखते हैं । यद्यपि शालग्राम सम्बन्धी हरि देव चक्रसे चिह्नित भी हों तथापि यथायोग्य लक्षणोंका विचार करके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णम् ॥ यथायोग्यं विचार्यैव ग्रहीतव्यं प्रयत्नतः । आदौ शिलां परीक्षेत ग्राह्याग्राह्यविभागतः । स्थिरासना सुवृत्ता च फलाकारा यवानना । कृष्णा च पाण्डुरा पीता नीलश्यामाथ शुक्लका । कपिलाभा च काचाभा दूर्वाभा रक्तपिङ्गला ॥ एताः शुभा शिलाग्राह्या मिश्राश्चैव विशेषतः । स्थिरासना परिज्ञेया स्वस्थासना सुखप्रदा ॥ वृत्ता सुवृत्तदा प्रोक्ता फलाकारा फलप्रदा । यवानना च विज्ञेया वाक्सौन्दर्यप्रदायिका ॥ मंत्रसिद्धकरी स्निग्धा नित्यं श्रीकान्तिदायिका । कीर्त्तिभाग्यप्रदा स्निग्धा पाण्डरा पापहारिणी ॥ पीता पुत्रप्रदा नित्यं लक्ष्मीशान्तिप्रदा तथा । नीलावहन्दा ज्ञेया तथा वै कान्तिदायिनी । पुष्टिवृद्धिप्रदा श्यामा श्वेता सात्विकदायिनी ॥ नेत्रे उन्मीलिते यस्या अक्षसूत्रकमण्डलू । कपिलाख्या भवेन्मुद्रा ज्ञानैश्वर्यप्रदायिनी ॥ कामप्रदा च काचाभा दूर्वाभा पशुदायिका । रक्तारोग्यप्रदा नित्यं मिश्रामिश्रफलप्रदा ॥ धात्रीफलप्रमाणा या करसंपिहिता गता । पूजनीया शिलाभावे तत्रजातद्रुमोपिका ॥ तत्राप्यामलकी तुल्या सूक्ष्मावाऽतीव या भवेत् । तस्या-

---

ही यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकारसे कि पहले तो शिलाकी परीक्षा करे जो कि ग्राह्य अग्राह्य क्या है ? सो ग्राह्याग्राह्य विभाग इस प्रकार का है— स्थिर आसनवाली, गोलाकार, फलाकार, यवमुखी, कालेवर्णकी, पाण्डुवर्णकी, नीली, पीली, साँवली, सुफेद, कपिल वर्णकी, काँच सदृश, दूर्वा वर्णकी, लाल भूरे वर्णकी और विशेषतः मिश्रवर्णकी इतनी शुभ शिलाएँ ग्राह्य होती हैं । स्थिरासनशिला वह है जो आसन पर ठीक बैठती हो वह सुखदायिनी होती है । वृत्तशिला वृत्तिदायक है । फलाकार फलदायक होती है । जौ की नोखके जैसे मुखवाली (यवानना) शिला वचन और सौन्दर्यको देनेवाली जाननी चाहिये । चिकनी शिला मन्त्रकी सिद्धि देती है और नित्य ही श्री, कान्ति, कीर्ति और भाग्यकी दायिका होती है, पाण्डु वर्णकी पापहारिणी होती है, पीतवर्णकी पुत्र, लक्ष्मी और शान्ति प्रदा होती है । तथा नील वर्णकी शिलाको अधिक अन्नदायिनी जाननी चाहिये । श्याम शिला पुष्टि और वृद्धि करती है । श्वेतशिला सत्व सम्बन्धी गुणदायिनी होती है । काच सदृश कामना की दाता और दूर्वावर्ण की (हरित) पशुदायिनी होती है । लालशिला आरोग्य फल को देती है और मिश्र वर्ण की शिला मिश्रफल दायिनी होती है ॥ जो आँवलेके प्रमाण की हो, हथेली के बाँध देने से हाथ पर छिप सकती हो ऐसी शिला की पूजा करनी चाहिये । यदि शिला न मिली तो उस पर्वत का वृक्ष भी पूज्य होता है ॥ उसमें भी आँवले की तुल्य वा उससे भी छोटी अतीव सूक्ष्मा जो शिला होती है हे ब्रह्मन् ! उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम् ॥ यथा यथा शिला सूक्ष्मा तथैव च महत्फलम् । तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धय इति ॥

पद्मपुराणे—श्यामाकृष्णा तथा पीता श्वेता कृष्णा च कापिला । अतिरक्ता धूम्रवर्णा पिशङ्गा मधुपिङ्गला ॥ बहुवर्णा कलङ्का च तथा च स्निग्धवर्णिनी । इत्यादि वर्णभेदेन ज्ञेया नानाविधाः शिलाः ॥

स्निग्धा सूक्ष्मा शीतलाङ्गा वृत्ताचोन्नतमस्तका । वामचक्रा चारुचक्रा मध्यचक्रा सुगह्वरा ॥ वनमालाधरा वृत्तवदना कमलादिवत् । एताग्राह्या विशेषेण साधकस्य सुखप्रदाः ॥ स्निग्धा सिद्धिप्रदा नित्यं सूक्ष्मा दिव्यफलप्रदा । सन्तोषं शीतलाङ्गा च वृत्तासिद्धिप्रदायिका ॥ वशीकरा चार्चनीया तथा चोन्नतमस्तका । सर्वसिद्धिकरी श्यामा कृष्णा कीर्त्तिविवर्द्धिनी ॥ श्वेता मोक्षप्रदा चैव पीता धनकरी स्मृता । सुखदा बहुवर्णा च रक्ता राज्यकरी तथा ॥ वामचक्रा मध्यचक्रा पुत्रपौत्रविवर्धिनी । कीर्त्तिप्रदा चारुचक्रा गह्वरा प्राणदा भुवि ॥ वनमालायुता चापि दारसौभाग्यदायिका । वृत्ताऽऽनना

पर मैं लक्ष्मी के साथ सदा निवास करता हूँ । जितनी शिला सूक्ष्म होती है उतना ही महान् फल होता है । इसवास्ते चतुर्वर्ग वा त्रिवर्गफलसिद्धि के लिए उसी सूक्ष्म शिलाकी पूजा करनी चाहिये । पद्मपुराण में कहा है कि अनेक वर्णों के भेद से कई प्रकार की शिलाएँ होती हैं जैसे, श्यामवर्ण की काली, पीली, सुफेद, खूबकाली, कपिलवर्ण की खूबलाल, धूम्रवर्णा सुनहरी, मधुवर्ण की, बहुवर्ण की कलङ्कयुक्त और स्निग्ध इत्यादि ॥

सूक्ष्म, स्निग्ध तथा शीतलअङ्ग की, गोलाकार, उन्नतमस्तकवाली, वामचक्रा, सुन्दरचक्रा, मध्यचक्रा तथा गह्वर (गुफा) युक्त, वनमालावाली गोल वदन वाली और कमलादिक से युक्त, विशेषतः इतनी शिलाएँ ग्राह्य होती हैं क्योंकि पूजक के लिये सुखदायक होती हैं ॥

अब इनके फल क्रमशः कहे जाते हैं—स्निग्ध शिला नित्य सिद्धिप्रद होती है, सूक्ष्म दिव्यफल को देती है, शीतलाङ्गी सन्तोष देती है, गोलाकार सिद्धिदायिका होती है, उन्नत मस्तकवाली पूजा से सबकी वशकारिणी होती है एवम् श्यामशिला सर्वसिद्धिकरी, श्यामा वा कृष्णा कीर्तिवर्द्धिनी, श्वेत मोक्षदात्री, पीली धनकरी, बहुवर्ण की सुखदायिनी, लाल राज्यदात्री तथा वाम वा मध्यचक्र की सन्तानवृद्धि करने वाली, सुन्दरचक्रकी कीर्तिदायिनी, गुंफावाली (गह्वरा) प्राणदात्री वनमालायुक्त स्त्री और सौभाग्य की दायिका होती है ॥

१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भुक्तिकरी वाचां कौशल्यदायिका ॥ पद्मादियुक्ता सौभाग्यधनधेनुफलप्रदा । स्थिरासनयुता चापि राज्यभोगापवर्गदा ॥ चक्रैस्तुकेशराद्यैर्वा लाञ्छनैस्समलङ्कृता । वनमालालाञ्छिताया तत्रास्ते श्रीसहायवानिति ॥ ब्रह्मपुराणे—सर्वकर्मप्रदा सौम्या कराला भयदुःखदा । स्निग्धा च श्रीकरी नित्यं रूक्षा दारिद्र्यदायिनी ॥ शुक्ला मोक्षप्रदा नित्यं रक्ता राज्यफलाप्तये । पीता दारिद्र्यनाशाय मिश्रा मिश्रफलाप्तये ॥ सुमुखी श्रीकरी नित्यं तथा नीलाऽन्नदायिनी । कपिला हरते पापं ब्रह्मचर्येण पूजिता ॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव ध्यानयोगेन पूजिता । शालग्रामशिलाचक्रे संस्थितो भगवान् हरिः ॥ निर्दहत्या खिलं पापं ज्वलितोग्निरिवेन्धनमिति ॥

पद्मपुराणे—नारद उवाच । शालग्रामशिलाभेदलक्षणं मूर्त्तिनिर्णयम् । कथ्यतां भगवंस्तस्याः फलं चापि शुभाशुभम् ॥

ब्रह्मोवाच । श्यामा नीला तथा पीता रक्तवर्णा तथैव च । पाण्डुरा कृष्णवर्णा च कपिलाश्चापि ताः शिलाः ॥ पत्नीहरा स्यात्कपिला

तथा वृत्तमुखी, भुक्तिकरी और वाक्चातुर्य दायक, पद्म इत्यादि चिन्हयुक्त शिला सौभाग्य, धन और नवप्रसूता गौ की देने वाली और स्थिरासन से युक्त शिला राज्य, भोग और मोक्षप्रद होती है। जो शिला चक्र वा केशरादि चिन्हों से अथवा वनमाला से भूषित है उसपर लक्ष्मी सहित भगवान निवास करते हैं।

—ब्रह्मपुराण में—

सौम्यमूर्त्ति सर्व कर्मप्रदायिनी होती है इसीप्रकार करालमूर्ति भय और दुःखदात्री तथा स्निग्धमूर्ति नित्य श्रीप्रदा और रूक्षमूर्ति दारिद्र्यदायिनी होती है। मोक्ष के लिये श्वेत, राज्य प्राप्ति के लिये लाल, श्रीप्राप्ति के लिये सुमुखी मूर्तियाँ प्रशस्त होती हैं। तथा नील मूर्ति अन्नदायिनी होती है। ब्रह्मचर्य में रह कर कपिल मूर्ति की पूजा करने से (ब्रह्म हत्यादिक) पाप छूट जाते हैं, ध्यान योग से पूजा की जावे तो दर्शन और स्पर्शन से ही पाप दूर होता है॥ शालग्राम शिला चक्र में संस्थित हरि भगवान् लकड़ी को जलती हुई आग की तरह सम्पूर्ण पापों का दाह करते हैं।

पद्मपुराणमें—

नारदजी ने पूछा कि हे भगवन्। शालग्राम शिलाओं के सभेद लक्षण, मूर्ति का निर्णय और उसके शुभ अशुभ फलों का वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी ने कहा—वे शिलायें विभिन्न वर्ण की होती हैं; जैसे—श्याम, नील, पीत, रक्त, पाण्डु, कृष्ण एवम् कपिल वर्ण की॥ कपिलवर्ण की शिला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नीला लक्ष्मीप्रदायिका। पुष्टिवृद्धिप्रदा श्यामा शुक्ला मुक्तिप्रदायिनी ॥ पीता धनकरी ज्ञेया रक्ता राज्यकरीस्मृता। अतिरक्ता रोगदास्या-त्कृष्णा कीर्तिप्रदायिका ॥ पापघ्नी पाण्डुरा नित्यं रूक्षा चोद्वेगकारिणी। स्थूला निहन्ति चैवायुर्वक्रा दारिद्र्यदायिनी। स्निग्धा सिद्धिप्रदा शश्वन्निष्फला स्यादलाञ्छना। करालं विकरालं च अध ऊर्ध्वास्यमुष्णकम्। दर्दुरं स्फुटितं दग्धं त्रिकोणं च विवर्जयेत् ॥ अन्तःस्फुटितचक्रञ्च बद्धचक्रं तथैव च। बहुरेखं बहुच्छिद्रं तिर्यक्चक्रं तथा त्यजेत् ॥ वृत्तसूत्राष्टमो भागश्चोत्तमो मध्यमावुभौ। भागत्रयं कनीयस्तु शालग्रामस्य लक्षणम् ॥ अधआस्यं क्षयकरमूर्द्ध्वमुच्चाटनं स्मृतम्। आयुष्यं हरते घृष्टं करालं कुलनाशनम् ॥ दुर्दरं दग्धमुष्णं च दारिद्र्यकलिदुःखदम्। मित्रघ्नं बद्धचक्रं च त्रिकोणं बन्धुनाशनम् ॥ बहुरेखं बहुच्छिद्रं विदुः पुत्रविना-शनम्। विकले अर्थहानिः स्यात्कलङ्कक्षयकारकम्। इति

पत्नीनाश करती है, नील लक्ष्मीदायक होती है। श्याम वर्ण की पुष्टि और वृद्धिप्रद होती है। शुक्लवर्ण की मुक्तिदायिनी होती है एवम् पीली धनकरी, रक्तवर्ण की राज्यकरी मानी गयी है। अतिरक्तवर्ण की रोग दात्री, कृष्णवर्णकी यशस्करी, पाण्डुवर्ण की पापघ्नी और रूक्षवर्ण की सदा चित्तविभ्रम कारिणी समझी गयी हैं ॥ स्थूल मूर्ति आयुक्षीण करती है, टेढ़ी दारिद्र्यदायिनी होती है तथा स्निग्धवर्णकी सिद्धिदायिनी और विनाचिह्नकी सदा निष्फल होती है। विकट, अति भयङ्कर, अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, कुछ गरम जैसी (मेढ़कके सदृश) खटखटाहट देनेवाली, टूटीफूटी, जली हुई और त्रिकोण इतनी मूर्तियोंका वर्जन करें। तथा भीतरमें फूटे चक्रवाली, सटे चक्रवाली बहुत रेखाओंसे युक्त, बहुत छिद्रोंसे युक्त और तिरछे चक्रवाली शिलाओंको भी त्याग देवें। (मूर्तिकी नापसे) गोलसूत्रका आठवाँ हिस्सा मुँह पर ठीक आ जाता हो तो उसे उत्तम, दोनों भागको बराबर करनेसे अर्थात् मूर्तिप्रमाण सूत्रका चौथा हिस्सा ठीक मूर्तिके मुँहके बराबरका होता हो तो उसे मध्यम एवं उक्त रीतिसे तीसरा भाग ही ठीक बैठता हो तो कनिष्ठ, इस प्रकार शालग्रामका लक्षण जानना चाहिए। अधोमुख क्षयकारी और ऊर्ध्वमुख उच्चाटनकारी होता है। टकराया हुआ शालग्राम आयुष्यका नाश करता है, विकट कुल नाश कर डालता है। खटखटाता, जला हुआ और उष्णसा दारिद्र्य, कलह और दुःखदायी होता है। सटे (बद्ध) चक्रवाला मित्रघाती, त्रिकोण बन्धुविनाशकारी होता है और बहुत रेखा तथा बहु छिद्रवाले शालग्रामको पुत्रविनाशकारी समझते हैं ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराणे—स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च। रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूलात्वलाञ्छना॥ कपिला कर्वुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका। बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः॥ बद्धचक्राऽथवा काचिद्भग्नचक्रांत्वधोमुखी। स्निग्धा सिद्धकरी मंत्रे कृष्णा कीर्त्तिर्ददाति च। पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्रप्रदायिनी॥ नीला संदिशते लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिनी॥ रूक्षा चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिका॥ स्थूला निहन्ति चैवायुर्निष्फलास्यादलाञ्छिता। कपिला कर्वुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका। बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवापुनः॥ बद्धचक्राऽथवा यास्याद्भग्नचक्रात्वधोमुखी। पूजयेद्यः प्रमादेन दुःखमेवलभेत स इति। अग्निपुराणे—तथा व्यासमुखी भग्ना विषमा वक्रचक्रिणी। विषमावर्तनाभिश्च नारसिंही तथैव च। कपिला विभ्रमावर्ता रेखावर्ता च या भवेत्॥ दुःखदा साच विज्ञेया सुखदा न कदाचन इति॥ स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला तथैव समच-

---

लक्षण कला रहित शालग्रामदेव अर्थ नाश करते हैं और कलङ्क मूर्ति क्षयकारिणी होती है। स्कन्दपुराणमें—शिलाओंके स्वरूप निम्नलिखित प्रकारसे दर्शाये गये हैं। जैसे—स्निग्धा, कृष्णा, पाण्डुरा, पीता, नीला, रक्ता, रूक्षा, वक्रा, महास्थूला, निश्चिह्ना, कपिला, कर्वुरा, भग्ना, बहुचक्रा, एकचक्रा, बृहन्मुखी, बृहच्चक्रा, लग्नचक्रा, बद्धचक्रा, अथवा कितनी भग्नचक्रा और अधोमुखी भी होती हैं। अब क्रमशः इनके फल बताये जाते हैं—स्निग्धशिला मंत्रोंकी सिद्धिदात्री होती है एवम् कृष्णा कीर्तिकरी, पाण्डुरा पापदहनी, पीता पुत्रप्रदायिनी होती हैं। नीला लक्ष्मीको देती है, रक्ता रोगप्रदायिनी, रूक्षा चित्तसंभ्रमकारिणी, वक्रा (टेढ़ी) दारिद्र्यकारिणी होती है, स्थूला आयुष्यनाश करती है और निश्चिन्हा निष्फल ही होती है। तथा च—कपिला, कर्वुरा (कपोत वर्णकी), भग्ना (टूटीफूटी), बहुचक्रा, एकचक्रा, विशालचक्रा, विशालमुखी, लग्नचक्रा, (जूटे हुए चक्रवाली) अथवा बद्धचक्रा, अथवा भग्न (छिन्न) चक्रा और अधोमुखी इन शिलाओंकी प्रमादसे जो नर पूजा करता है वह केवल दुःखभागी होता है। इत्यादि॥

अग्निपुराणमें—

तथा—विस्तीर्णमुखी, भग्ना, विषमा, वक्रचक्रिणी, विषमावर्ता, विषमनाभि, नारसिंही, कपिला, विभ्रमावर्ता और रेखावर्ता इतने प्रकारकी जो शिला होती है वह केवल दुःखदायिनी मात्र है सुखदात्री कभी नहीं होती है। स्निग्धा (चिकनी), श्यामा, शुक्ला, समचक्रा, घोरमूर्ति, अनन्तमूर्ति, गम्भीरमूर्ति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रिका ॥ घोरमूर्त्तिरनन्ताख्या गम्भीरासम्पुटा तथा । सूक्ष्मामूर्त्तिश्च सुमुखी पूजिता सिद्धिदायिका । धात्रीफलप्रमाणा या करेणोभयसम्पुटा ॥ पूजयेद्यः प्रयत्नेन भक्त्या तान्तु प्रपूजयेत् । पूजिते फलमाप्नोति इहलोके परत्र चेति ।

नरसिंहपुराणे—छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियम् । वर्बरे च महद्दुःखं शूलाग्रे मरणं ध्रुवमिति ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—त्याज्यां शिलामथो वच्मि शृणु ब्रह्मन् समाहितः । तिर्यक्चक्रा परित्याज्या स्फोटा रूक्षा तथैव च ॥ कुरूपा निष्ठुरास्या च कराला विकरालिका । कपिला विषमावर्त्ता व्यात्तास्या कोटरा तथा ॥ आसने चलना भग्ना महास्थूला विगर्हिता । आसने सुषिरं यस्याश्चक्रेणै-केन संयुता । दर्दुरा बहुचक्रा च लग्नचक्राऽप्यधोमुखी ॥ सच्छिद्रा च सरक्ता च वृत्तचक्रा प्रदग्धिका । चक्रेण वृत्तचक्रा च वृत्तचक्रा प्रकीर्त्तिता । बहुरेखा समायुक्ता भग्नचक्रा तथैव च ॥ दीर्घचक्रा परित्याज्या पङ्क्तिचक्राविशेषतः । मस्तकास्या ह्यचिह्ना च वर्ज्यास्त्वेताः सदा बुधैः । क्रूरदंष्ट्रा

सम्पुट तथा सूक्ष्ममूर्ति और सुमुखी ये सब पूजा करनेसे सिद्धिदायिनी होती हैं। आवलेके प्रमाणकी जो दोनों हाथोंसे छिपी जा सकती हो, यत्नपूर्वक पूजा करने वालेको और भी अच्छी तरहसे उस मूर्तिकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजाके करनेसे पूजकको यहाँ पर और परलोकमें भी अच्छा फल मिलता है॥

नरसिंह पुराणका प्रमाण मिला है कि—

छत्राकार मूर्ति पर राज्य, गोलाकार पर महान् ऐश्वर्य, और बर्बर (राजमाष सदृश) पर पूजा करनेसे बड़ा दुःख होता है, शूलाग्र (शूलकी नोक सदृश) पर पूजन करे तो निश्चय ही मृत्यु होती है।

ब्रह्माण्ड पुराणमें—

हे ब्रह्मन्! अब त्याज्य शिलाओं का वर्णन करता हूँ सावधान होकर सुनिये। तिरछे चक्रवाली, टूटी फूटी, रूखी, कुरूप, निष्ठुरमुखी, विकट रूपकी, विकराल (भयङ्कर), कपिलवर्णकी, विषमाऽऽवर्तवाली, फटे मुखकी, खड़्हरी, आसन पर डोलनेवाली, टूटी हुई, अति स्थूल व विगर्हित इतनी शिलाएँ निन्दित होती ह। आसन पर छिद्रवाली, एक चक्रसे युक्त, दर्दुरा (खटखटाती), बहुतचक्र-वाली, लग्नचक्रा, अधोमुखी, सछिद्रा, खूब लालवर्णकी वृत्तचक्रा "चक्रसे गोलाकार जो दीखती है वह वृत्तचक्रा कहलाती है।" बहुत रेखाओंसे युक्त भग्नचक्रा और दीर्घचक्रा इतनी शिलाएँ त्याज्य हैं। विशेप करके पङ्क्तिचक्राको तो त्याग ही देना चाहिये। मस्तक पर मुखवाली और बिना चिह्नकी शिलाओंका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समायुक्ता स्फोटा बुद्बुदसंयुता। अचिराच्छुष्कतां याति यस्यां लिप्तं तु चन्दनम् ॥ रूक्षा सा च शिला ज्ञेया पूजकानामनिष्टदा। कुरूपा कुत्सिताकारा निष्ठुरानिर्द्रवा स्मृता। स्ववेष्टनतुरीयांशमास्यं यस्याः शुभा हिसा॥ तस्मादधिक वक्त्रा च करालेति प्रकीर्त्तिता। तृतीयांशस्य संयुक्ता दंष्ट्रया विकरालिका॥ संवृतास्या परिज्ञेया वेष्टनाच्चाष्टभागतः। व्यात्तास्या चाधिका ज्ञेया वृत्ताधिक्येतु कोटरा॥ स्थूलात्वष्टाङ्गुलायामा पूजकस्याङ्गुलेन तु। अधिके तु महास्थूला तां गृही नतु पूजयेत्॥ अधोमुखा-त्वधश्चक्रा ऊर्ध्वास्या चापि निन्दिता। तिर्य्यक्चक्रान्विता सा स्याद्भ्रमण-क्लेशसंयुता। क्रूरारोगप्रदा नित्यं स्फोटाचायुर्विनाशिनी॥ रूक्षाचोद्वेगदा नित्यं दुःखदारिद्र्यदायिका। कुरूपा दैन्यदा चैव निष्ठुरा पुण्यनाशिनी॥ अनस्या मौर्ख्यदा चैव कराला भयदायिका। ऐहिकामुष्मिकं हन्ति विकराला स्वभावतः॥ कपिला पत्निहा नित्यं व्यात्तास्या जयनाशिनी। कोटरा पूजकं

भी वर्जन कर देना चाहिये। क्रूर दाँतोंसे युक्त फुटी हुई और बुलबुलाती जैसे कि जिस मूर्ति पर लेप किया गया चन्दन शीघ्र ही सूख जाता है उस शिलाको रूक्षा (रूखी) जानना चाहिये। वह पूजकोंके लिये अनिष्टदायक होती है। कुरूपा उसको कहते हैं जो बदसूरत ही हो एवं निष्ठुरशिला वह होती है जो नीरस रहती है। पहले उस मूर्त्तिकी किसी सूत्रसे नाप करले और उस सूत्रका चतुर्थांशके बराबर जिस शिलाका मुख होता है वह शुभ मानी जाती है। उससे कुछ बड़े मुखवाली कराल (विकट) कहलाती है। पूर्वोक्त सूत्रकी नापसे तृतीयांश समान दाँतसे युक्त मुखवाली विकरालिका कहलाती है। उसी वेष्टन सूत्रका आठवां भागके समान मुखवाली संवृत्तास्या कहलाती है। उस नापसे अधिक व्यात्तास्या (फटेमुखवाली) और वृत्तकी अधिकता हो तो कोटरा जाननी चाहिये। पूजककी अंगुलीके प्रमाणसे आठ अङ्गुलकी लम्बी स्थूल कहलाती है। उससे भी अधिक नापकी हो तो महास्थूल जाननी चाहिये गृहस्थ उसे पूजा न करे। अधोमुखी, अधश्चक्रा और ऊर्ध्वमुखी भी निन्दित होती है। तिरछेचक्र वाली शिला भ्रमण और क्लेशदायिनी होती है। क्रूरमूर्त्ति रोगदायिका है फुटी हुई नित्य आयुका विनाश करती है। रूखी चित्त विभ्रम करनेवाली और नित्य दुःखदारिद्र्य दायिका होती है। कुरुप तकलीफ देती है निष्ठुर पुण्यनाशकारिणी होती है विनामुखकी मूर्खत्वदात्री और करालमूर्ति भयदायक होती है। एवं-रीत्या विकराल स्वभाव ही से ऐहिक और परलोकको नष्ट करती है। कपिलवर्ण-की पत्नीघातिनी और व्यात्तमुखी जयनाशिनी जाननी चाहिये। कोटरा पूजककी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हन्ति तथा वन्धुविनाशिनी ॥ आसने चलना नित्यं प्रवासस्य च दायिनी । भग्ना धनहरा नित्यं महास्थूला व्ययप्रदा ॥ गर्हिता पापदा प्रोक्ता कीर्त्तिहा सुषिरासना । एकचक्रा कुलघ्नीस्यान्मस्तकाख्या च पुत्रहा ॥ दुर्दरा कुष्ठदा ज्ञेया बहुचक्राभयप्रदा । बहुचिन्ताप्रदा छिद्रा लग्ना चान्ध्यप्रदा हिसा ॥ अधोगतिप्रदा ज्ञेया तथैवाधोमुखा तु सा । वृत्तचक्रा वयो हन्ति यशोघ्नी वहुरेखिका ॥ पङ्क्तिचक्रा पतिं हन्ति बृहच्चक्रा गृहक्षयी । अचिह्ना निष्फला ज्ञेया निराशायाः प्रदायिनी ॥ शेषा या गर्हिता प्रोक्ता तां गृही न तु पूजयेदिति ।

स्कन्दपुराणे--अथाग्राह्यान्प्रवक्ष्यामि शालग्रामशिलागतान् । न स्थूलं न कृशं भिन्नं नातिकृष्णं नकर्कशम् ॥ करालं विकरालं च तिर्यक् चक्रं विदिङ्मुखम् । पृथुचक्रं चोर्ध्वचक्रमधःपार्श्वशिरोमुखम् ॥ वक्त्रदुष्टं बद्धचक्रमचक्रं वक्रचक्रकम् । भग्नचक्रं भग्नवक्त्रं तथा विषमचक्रकम् ॥ अणुचक्रं बहुचक्रं पङ्क्तिचक्रं विवर्णकम् । धूम्रातिरक्तकपिलं

ही हिंसा करती है । अपिच बन्धुविनाशिनी भी होती है । आसन पर हिलनेवाली नित्यप्रवासको देती है । भग्नशिला धनहारिणी और महास्थूल खर्च करानेवाली जाननी चाहिये ।

विगर्हित शिला पापको देती है, छिद्रासनवाली यशोविनाशक है । एवं एक चक्रा हो तो कुलघ्नी, मस्तक मुखी हो तो पुत्रघातिनी, खटखटाती हो तो कुष्ठदा, बहुचक्रा हो तो भयप्रदा, छिद्रवाली हो तो बहुचिन्ता प्रदायिनी, लग्नचक्रा हो तो पूजकको अन्धा बनानेवाली एवं अधोगति की देनेवाली, जाननी चाहिये । वैसे ही अधोमुखी भी होती है । वृत्तचक्रवाली आयुका नाश करती है, बहुत रेखावाली कीर्ति विनाशिनी होती है । पंक्तिचक्रवाली पतिहिंसा करती है, विशाल चक्रकी शिला गृहका क्षय करती है । विना चिन्हकी शिला निष्फल जाननी चाहिये । क्योंकि वह कभी इच्छाकी पूर्ति होने नहीं देती है । उक्त लक्षणसे बची हुई निन्दित जो शिला कही गई है गृहस्थ उसे पूजा न करे ।

स्कन्दपुराणपर—ब्रह्माजीके प्रति भगवान्ने कहा है कि अब शालग्राम शिला सम्बन्धिअग्राह्यस्वरूपोंका वर्णन करूँगा । न तो स्थूल ग्राह्य है न तो कृश वा भिन्न ही एवं न अतिकृष्ण ग्राह्य है नतो कर्कश ही । एवं कराल, विकराल, तिर्यक्चक्र, (तिरछाचक्रवाला) विदिशाओं पर मुखवाला, विशालचक्र, ऊर्ध्वचक्र, अधोमुख, पार्श्वमुख, शिरोमुख, मुख से दुष्ट, बद्धचक्र, चक्रसे रहित, बक्रचक्र (टेढ़े चक्र का) टूटेचक्रका, टूटेमुखका तथा विषमचक्रका; सूक्ष्म चक्रका, एवं बहुचक्र,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलङ्कं मधुपिङ्गलम् ॥ सन्दिग्धवर्णं स्फुटितं भग्नोष्टं वक्रकं तथा । अन्तः स्फुटितभग्नं च दुर्दरं निम्नमस्तकम् ॥ अतिस्थूलमतिह्रस्वमन्तःसलिलधारिणम् । त्रिकोणं बहुरेखाढ्यं चिह्नहीनं चलासनम् ॥ अर्द्धमुन्नतमुष्णं च दग्धं घृष्टं च रूक्षकम् । छिद्रासनं बहुच्छिद्रं स्फोटमैहिकवाञ्छिभिः ॥ पूजायां वर्जनीयं स्यान्निष्कामश्चेन्नदुष्यति । करालं कुलनाशं स्याद्विकरालमनिष्टदम् । कार्यविघ्नकरं तिर्यक् विदिग्वक्त्रं तु शोकदम् ॥ अतुष्टिदं स्थूलचक्रमूर्ध्वमुच्चाटनं भवेत् । अधोवक्त्रं पार्श्ववक्त्रं क्षयरोगविधायकम् ॥ शिरोवक्त्रं पुत्रवृद्धिप्रतिवन्धकमीरितम् । दुःखप्रदं वक्रतुण्डं मित्रघ्नं बद्धचक्रकम् । अचक्रं सर्वशून्यं च वक्रचक्रं भयप्रदम् । पापदं भग्नचक्रं च स्तेयदं भग्नवक्त्रकम् । विषदं विषमंचक्रं बहुचक्रं कुलक्षयम् ॥ पङ्क्तिचक्रं पतिघ्नं स्याद्विवर्णं कुलनाशनम् । अधर्मदं धूम्रवर्णमतिरिक्तं तु रोगदम् । कपिलं पत्निहन्नित्यक्कलक्कं क्षयकारकम् । मधुवर्णं मध्यमं स्याद्धन्ति संदिग्धवर्णकम् ॥ स्फुटितं पुत्रनाशाय भग्नौष्टं भुक्तिनाश-

---

पंक्तिचक्र, कुरूप, धूँधला, अतिलाल, कैरा, कलङ्की, मधुवर्ण, अनिश्चितवर्ण, फूटा हुआ, ओठफटा, टेढ़ा, भीतरसे टूटा या फूटा, दुर्गर्त, (दर्दुर पाठमाने तो खटखट अवाजदार) गम्भीर मस्तक वाला, अतिस्थूल, अतिह्रस्व, अन्दरमें पानीदार, त्रिकोण, बहुरेखासम्पन्न, चिन्हहीन चंचलासन, आधा हिस्सेका, ऊँचा, तपमान, जला, रगड़ा गया, रूखा, छिद्रासन, अधिक छिद्रका और फूटा हुआ इत्यादि शालग्रामोंकी पूजा नहीं करनी चाहिये। जो लोग इहलौकिक फलकी वान्छा रखते हैं: यदि निष्कामनासे पूजाकरे तो दोष नहीं है। अब उपरोक्त शालग्रामोंके क्रमशः फल बताये जाएंगे। कराल कुलका नाश करता है, विकराल अनिष्टदायी है, तिर्यङ्मुख कार्य में विघ्न डालता है, विदिशामुख शोकदायी है इसीप्रकार स्थूलचक्र से असंतोष, ऊर्ध्वचक्रसे उच्चाटन, अधोमुख और पार्श्वमुखसे क्षयरोग, शिरोमुख से पुत्र वृद्धि का प्रतिबन्ध (संतान की रुकाहट) बताया है। वक्रमुख दुःखदायी है। बद्ध चक्र से मित्रघात, अचक्र सर्वशून्य तथा वक्रचक्र से भय होता है। भग्नचक्र पापदायी है। भग्नमुख से चोरीका कलंक लगता है। विषम चक्र विपदायी है। बहुचक्र कुलका क्षय करता है। पङ्क्तिचक्र पतिका घात करता है। और विवर्ण कुल नाशकारी है। धूम्रवर्णवाला अधर्म देता है। अतिलाल रोग बढ़ाता है। कपिलवर्णका पत्नीघातकारी है। एवं कलङ्कीको क्षयकारी जानना चाहिये। मधुवर्ण मध्यम फलका होता है। अनिश्चित वर्णवाला घातकारी है। स्फुटित से पुत्रनाश, भग्नौष्ठ से भोग नाश होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नम् । आस्थानभङ्गदं भग्नं दुर्दरं क्लेशदं स्मृतम् ॥ स्मयावहं नम्रशीर्षमतिस्थूलं धनापहम् । अतिह्रस्वमपूजार्हं त्रिकोणं बन्धुनाशनम् ॥ बहुरेखाङ्कितं दद्यादसत्यं राजसंसदि । सक्तं तु मचिह्नं स्यात्स्थाननाशं चलासनम् ॥ कुलवृद्धिविनाशाय अर्द्धमुन्नतमीरितम् । चित्तदाहदमुष्णं च दग्धं मृत्युभयप्रदम् । उद्वेगदायकं रूक्षं घृष्टच्छिद्रं तु रोगदम् । पैशून्यदं बहुच्छिद्रं स्फोटमायुष्यनाशनम् ॥ इति

अत्र करालाभयदुःखदेत्यादि शालग्रामदोषप्रतिपादकानि वाक्यानि गृहस्थविषयाणि ।

भग्नं विषमसानं च भग्नचक्रैकचक्रकम् ।

कपिलं नरसिंहं च वर्जयेच्च सदागृहीति ब्रह्मपुराणवचनात् । अधिकेतु महास्थूला तां गृही न तु पूजयेत् । शेषा या गर्हिता प्रोक्ता तां गृही न तु पूजयेदित्युदाहृतवचनाच्च ।

यद्वा सकामार्चनविषयत्वेन योज्यानि । करालं विकरालं चेत्युपक्रम्य

टूटाहुआ निवासस्थान का बिछोड़ा करनेवाला होता है ।

दुर्दर क्लेशदायी समझा गया है । (क्वचिद्दुर्दरमिति वा पाठः) मूलोक्त श्लोकोंका सुगमता के लिये वाक्यपरिवर्तनद्वारा अर्थ किया गया और जा रहा है । नतशीर्षसे स्मय, अतिस्थूल से धननाश जानना चाहिये, अतिह्रस्व पूजनीय नहीं होता है । और त्रिकोणसे बन्धुनाश, बहुरेखाङ्कित से राजसभा में असत्यता, (चोट्टापन) अचिन्हसे पुण्यक्षय, चलासन से स्थान नाश, अर्ध उन्नत से कुलवृद्धिका विनाश, तपमानसे चित्तपर जलन, दाघसे मृत्युका भय, रूक्ष से उद्वेग, घिसे छिद्रवाले से रोग, बहुछिद्र से पैशून्यता और स्फोट से आयुष्यनाश जानना चाहिये ॥

यहां पर "कराला भयदुःखदा" इत्यादि शालग्राम दोष प्रतिपादक वाक्यों को गृहस्थ के लिये जानना चाहिये । क्योंकि टूटे हुए, विषम प्रमाण के, टूटेफूटे चक्रवाले, एक चक्र वाले, कपिलवर्ण के और नरसिंहजीके लक्षण वाले शालग्रामों को गृहस्थ सदा वर्जन करे ब्रह्मपुराणपर ऐसा वचन है । "पूर्वोक्त लक्षणों के अतिरिक्त" अधिक में महास्थूल मूर्ति की पूजा गृहस्थ न करें ॥ और "उक्तलक्षणों से बची हुई अर्थात् जो अनुक्त मूर्ति है उसे निन्दित जानकर गृहस्थ पूजा न करें । इत्यादि प्रमाणों का उदाहरण भी दिया है ॥ अथवा कामना की इच्छा रख कर उक्त गर्हित मूर्तियों की पूजा करना ठीक नहीं है, इत्यादि भाव समझ लीजिये । इस वास्ते कि "करालं विकरालं च···" यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजायां वर्जनीयं स्यान्निष्कामश्चेन्नदुष्यतीत्येवं ब्रह्माण्डे—निष्कामे दोषाऽभावप्रतिपादनेनार्थात्तद्वर्जनीयत्वस्य सकाम एव पर्यवसितत्वात्। स्निग्धा श्यामा तथा शुक्लेत्याद्युक्तप्रकारेण शोभनमूर्त्तिपूजने नैवैहलौकिकपारत्रिकफलप्राप्तेश्च। अथवा मुख्यशालग्राममूर्त्तिसम्भवविषयत्वेन योज्यानि। तदसम्भवे तु शालग्रामपूजाया नित्यत्वात् रूक्षाद्या अपि शालग्राममूर्त्तयः पूज्याः।

मुख्याः स्निग्धादयस्तत्राऽमुख्यारूक्षादयो मताः। मुख्याभावेत्वमुख्याहि पूज्या इत्युच्यते परैरिति वचनात् ॥ खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं द्विधा स्थितम्। शालग्रामोद्भवं चक्रं शिलादोषं न संस्पृशेत् ॥ शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रिका। खण्डिता स्फुटितावापि शालग्रामशिला शुभेत्यादि वचनैर्मुख्यशालग्रामशिलामूर्त्त्यभावविषये खण्डितस्फुटितादीनां दोषाभावस्योक्तत्वाच्च।

से शुरू कर "निष्कामश्चेन्न दुष्यति" यहाँ तक से ब्रह्माण्ड पुराण में सकाम के लिये ही वर्जनीय शिला विषयक दोष बताया गया है, निष्काम के लिये कोई दोष नहीं। "स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला" इत्यादि प्रकार से सुन्दर मूर्ति की पूजा से ही ऐहलौकिक और पारत्रिक फल की प्राप्ति भी बतायी है। दर असल में तो ऐसा जानना चाहिये कि लक्षणोक्त मुख्य मूर्तियों के रहते अलक्षणों की पूजा नहीं होती है, यदि लक्षणोक्त मूर्ति न मिली तो गृहस्थों को भी जैसी तैसी प्राप्त मूर्तियों की ही पूजा करनी चाहिये। क्योंकि शालग्राम की पूजा होनी ही चाहिये कारण कि वह नित्य कर्म है। अतः उक्त प्रकार से यही सिद्ध होता है कि अभाव अवस्था में रूक्षादि सभी सबकी पूज्य होती है।

"कई सज्जनों ने कहा है कि स्निग्धादि मूर्तियां मुख्य हैं, रूक्ष इत्यादि गौण हैं। यदि मुख्य मूर्ति प्राप्त न हो सके तो अमुख्य (गौण) की ही पूजा करनी चाहिये" ऐसा वचन है और भी कहा है कि "चाहे खण्डित हो, फूट गयी हो, चाहे दो टूक हो गयी हो या उसका पार्श्वभाग ही भिन्न हो उस शिला को कोई दोष छूतक नहीं सकता है जब कि उस शालग्राम शिला पर उत्पन्न हुआ चक्र दीखता रहता है ॥ और भी यदि खण्डित व फूटी टूटी हुई भी हो तो क्या है सचक्र शालग्राम शिला शुभ और पूजनीय ही होती है। इत्यादि वचनों द्वारा मुख्याभाव में गौण (खण्डित स्फुटितादि) पूजा का भी दोषाभाव बताते हुए विधान किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदमेवाभिप्रेत्य सर्वासां शालग्राममूर्त्तीनामभीष्टफलदायकत्वमुक्तम् । तथा हि पञ्चरात्रागमे पाद्मसंहितायाम् –

"शालग्रामशिलाश्चेता सौम्या सर्ववरप्रदा। श्रीकरी पीतवर्णा च रक्ताकामप्रदायता। कृष्णा पुष्टिप्रदा नित्यं पिङ्गला भोगदा सदा। शिलाश्चक्रसरिज्जाताः सर्वा मोक्षफलप्रदा॥ भुक्तिस्वर्गतिदाः सर्वा शिलाश्चक्रसरिद्भवाः। प्रादुर्भावैश्च मीनाद्यैस्तथा दिव्यायुधैरपि॥ लाञ्छिताः कौस्तुभाद्यैश्च भूषणैः कमलासन। अङ्किताः पूजनीयाः स्युर्भुक्तिमुक्तिफलार्थिभिः॥ सर्वाः स्वयम्भुवो ज्ञेया शिलाश्चक्रसरिद्भवाः। नित्य सन्निधिरेतासु परस्य परमात्मनः॥ न प्रतिष्ठा विधातव्या नचैवावाहनादिकम्। शालग्रामशिला यत्र पूज्यते भगवन्मयैरिति।

वसिष्ठसंहितायामपि--न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया। शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन्सन्निहितः सदा॥ मूर्त्यन्तरेषु विम्बेषु नयष्टव्यं तदेवतत्। शालग्रामशिलायांतु यष्टव्या मम मूर्त्तय इति।

इसी प्रमाण का अभिप्राय रखकर सभी शालग्राम संबन्धी मूर्तियाँ पूजा के लिये अभीष्ट फलदायक होती हैं, ऐसा कहा है॥

पञ्चरात्रागम में पद्म संहिता पर प्रमाण आया है—

शालग्राम सम्बन्धी शिला सुफेदही सभी वर की देनेवाली सौम्य होती है। इसी तरह पीली श्रीकरी, लाल कामदा, काली पुष्टिदायिनी और मधुवर्णकी सदा भोगदा होती है। चक्रसरित् में उत्पन्न हुई सभी शिलायें कामना के अनुसार भोग, मोक्ष और स्वर्ग की दायिनी होती हैं। (सरित् = अल्पनदी)॥ हे ब्रह्मन्! मत्स्यादिक अवतारों से और दिव्य आयुध तथा कौस्तुभादि भूषणों से अङ्कित शिलाएँ भुक्तिमुक्त्यादि फलार्थियों की पूजनीय होती हैं। चक्र सरित् में उत्पन्न सभी शिलाएँ स्वयम्भू स्वरूप की हैं, इनके सन्निधि में परात्पर परब्रह्म रहते हैं। जिस जगह पर भगवद्भक्त लोगों द्वारा शालग्राम की पूजा की जाती है वहाँ पर उसमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये न तो आवाहनादिक करना चाहिये।

वशिष्ठ संहिता पर भी—शालग्रामकी पूजा में सदा विष्णुभगवान उसी शिला की सन्निधि में रहते हैं। इसलिये जप प्राणप्रतिष्ठा संस्थापन इत्यादि क्रियाकलापकी कोई आवश्यकता नहीं है। शालग्राम शिलाके रहते अन्यमूर्ति सम्बन्धि बिम्बपर नहीं पूजा करनी चाहिये। क्योंकि वह भी वही है। उस शिलापर तो मेरी मूर्तियां पूजनीय होती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजायां वर्जनीयं स्यान्निष्कामश्चेन्नदुष्यतीत्येवं ब्रह्माण्डे—निष्कामे दोषाऽभावप्रतिपादनेनार्थात्तद्वर्जनीयत्वस्य सकाम एव पर्यवसितत्वात् । स्निग्धा श्यामा तथा शुक्लेत्याद्युक्तप्रकारेण शोभनमूर्त्तिपूजने नैवैहलौकिकपारत्रिकफलप्राप्तेश्च । अथवा मुख्यशालग्राममूर्त्तिसम्भवविषयत्वेन योज्यानि । तदसम्भवे तु शालग्रामपूजाया नित्यत्वात् रूक्षाद्या अपि शालग्राममूर्त्तयः पूज्याः ।

मुख्याः स्निग्धादयस्तत्राऽमुख्यारूक्षादयो मताः । मुख्याभावेत्वमुख्याहि पूज्या इत्युच्यते परैरिति वचनात् ॥ खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं द्विधा स्थितम् । शालग्रामोद्भवं चक्रं शिलादोषं न संस्पृशेत् ॥ शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रिका । खण्डिता स्फुटितावापि शालग्रामशिला शुभेत्यादि वचनैर्मुख्यशालग्रामशिलामूर्त्त्यभावविषये खण्डितस्फुटितादीनां दोषाभावस्योक्तत्वाच्च ।

से शुरू कर "निष्कामश्चेन्न दुष्यति" यहाँ तक से ब्रह्माण्ड पुराण में सकाम के लिये ही वर्जनीय शिला विषयक दोष बताया गया है, निष्काम के लिये कोई दोष नहीं । "स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला" इत्यादि प्रकार से सुन्दर मूर्ति की पूजा से ही ऐहलौकिक और पारत्रिक फल की प्राप्ति भी बतायी है । दर असल में तो ऐसा जानना चाहिये कि लक्षणोक्त मुख्य मूर्तियों के रहते अलक्षणों की पूजा नहीं होती है, यदि लक्षणोक्त मूर्ति न मिली तो गृहस्थों को भी जैसी तैसी प्राप्त मूर्तियों की ही पूजा करनी चाहिये । क्योंकि शालग्राम की पूजा होनी ही चाहिये कारण कि वह नित्य कर्म है । अतः उक्त प्रकार से यही सिद्ध होता है कि अभाव अवस्था में रूक्षादि सभी सबकी पूज्य होती है ।

"कई सज्जनों ने कहा है कि स्निग्धादि मूर्तियां मुख्य हैं, रूक्ष इत्यादि गौण हैं । यदि मुख्य मूर्ति प्राप्त न हो सके तो अमुख्य (गौण) की ही पूजा करनी चाहिये" ऐसा वचन है और भी कहा है कि "चाहे खण्डित हो, फूट गयी हो, चाहे दो टूक हो गयी हो या उसका पार्श्वभाग ही भिन्न हो उस शिला को कोई दोष छूतक नहीं सकता है जब कि उस शालग्राम शिला पर उत्पन्न हुआ चक्र दीखता रहता है ॥ और भी यदि खण्डित व फूटी टूटी हुई भी हो तो क्या है सचक्र शालग्राम शिला शुभ और पूजनीय ही होती है । इत्यादि वचनों द्वारा मुख्याभाव में गौण (खण्डित स्फुटितादि) पूजा का भी दोषाभाव बताते हुए विधान किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदमेवाभिप्रेत्य सर्वासां शालग्राममूर्त्तीनामभीष्टफलदायकत्वमुक्तम्। तथा हि पञ्चरात्रागमे पाद्मसंहितायाम् —

"शालग्रामशिलाश्चेता सौम्या सर्ववरप्रदा। श्रीकरी पीतवर्णा च रक्ताकामप्रदायता। कृष्णा पुष्टिप्रदा नित्यं पिङ्गला भोगदा सदा। शिलाश्चक्रसरिज्जाता: सर्वा मोक्षफलप्रदा॥ भुक्तिस्वर्गतिदा: सर्वा शिलाश्चक्रसरिद्भवा:। प्रादुर्भावैश्च मीनाद्यैस्तथा दिव्यायुधैरपि॥ लाञ्छिता: कौस्तुभाद्यैश्च भूषणै: कमलासन। अङ्किता: पूजनीया: स्युर्भुक्तिमुक्तिफलार्थिभि:॥ सर्वा: स्वयम्भुवो ज्ञेया शिलाश्चक्रसरिद्भवा:। नित्य सन्निधिरेतासु परस्य परमात्मन:॥ न प्रतिष्ठा विधातव्या नचैवावाहनादिकम्। शालग्रामशिला यत्र पूज्यते भगवन्मयैरिति।

वसिष्ठसंहितायामपि—न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया। शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन्सन्निहित: सदा॥ मूर्त्यन्तरेषु बिम्बेषु नयष्टव्यं तदेवतत्। शालग्रामशिलायांतु यष्टव्या मम मूर्त्तय इति।

इसी प्रमाण का अभिप्राय रखकर सभी शालग्राम संबन्धी मूर्तियाँ पूजा के लिये अभीष्ट फलदायक होती हैं, ऐसा कहा है॥

पञ्चरात्रागम में पद्म संहिता पर प्रमाण आया है —

शालग्राम सम्बन्धी शिला सुफेदही सभी वर की देनेवाली सौम्य होती है। इसी तरह पीली श्रीकरी, लाल कामदा, काली पुष्टिदायिनी और मधुवर्णकी सदा भोगदा होती है। चक्रसरित् में उत्पन्न हुई सभी शिलायें कामना के अनुसार भोग, मोक्ष और स्वर्ग की दायिनी होती हैं। (सरित् = अल्पनदी)॥ हे ब्रह्मन्! मत्स्यादिक अवतारों से और दिव्य आयुध तथा कौस्तुभादि भूषणों से अङ्कित शिलाएँ भुक्तिमुक्त्यादि फलार्थियों की पूजनीय होती हैं। चक्र सरित् में उत्पन्न सभी शिलाएँ स्वयम्भू स्वरूप की हैं, इनके सन्निधि में परात्पर परब्रह्म रहते हैं। जिस जगह पर भगवद्भक्त लोगों द्वारा शालग्राम की पूजा की जाती है वहाँ पर उसमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये न तो आवाहनादिक करना चाहिये।

वशिष्ठ संहिता पर भी—शालग्रामकी पूजा में सदा विष्णुभगवान उसी शिला की सन्निधि में रहते हैं। इसलिये जप प्राणप्रतिष्ठा संस्थापन इत्यादि क्रियाकलापकी कोई आवश्यकता नहीं है। शालग्राम शिलाके रहते अन्यमूर्ति सम्बन्धि बिम्बपर नहीं पूजा करनी चाहिये। क्योंकि वह भी वही है। उस शिलापर तो मेरी मूर्तियां पूजनीय होती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यत्रापि—शालग्रामशिलायां तु नावाहनविसर्जने। शालग्राम-शिलादौ यन्नित्यं सन्निहितो हरिरिति ॥

मंत्रराजानुष्टुब्विधानेपि—अमन्त्रेण नवै पूज्यः स्वमन्त्रेण स्वमुद्रया। स्वध्यानेन सदापूज्यो नान्यथा पूजयेद्धरिम् ॥

स्वमूर्त्तिः स्वेन मंत्रेण पूज्यैवावाहनं विना। सर्वाः शिलाः समभ्यर्च्याः पुरुषसूक्तेन नित्यशः॥ आवाहने ऋचा दद्यात्पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः। तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै यास्ते चोद्वासने ऋचा॥ अन्यं पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यज्ञ-सम्पूर्तिसिद्धये इति॥ इदं तु प्रसङ्गादुक्तम्। इति ग्राह्याग्राह्यशिलाभेद-लक्षणानि॥

अथ ब्राह्मणादिवर्णभेदेन पूज्या शालग्रामशिलामूर्तयस्तदधिकारिण-स्तत्संख्यादयश्चोच्यन्ते। हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे—ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु नृपैः संकर्षणस्तथा। प्रद्युम्नः पूज्यते वैश्यैरनिरुद्धस्तु शूद्रजैः। चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्या स्त्रयोराजन्यजातिभिः। वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथैकः

अन्यत्र भी कहा है—

शालग्राम शिलामें आवाहन विसर्जन कुछ नहीं होवे हैं। क्योंकि हरि-भगवान् नित्यही उन शिलादियों पर सन्निहित रहते हैं। मंत्रराजानुष्टुब् विधान में भी कहा है—विनामंत्र से शालग्राम की पूजा नहीं करनी चाहिये। तत्तल्लक्षणोक्त तत्तन्मूर्ति के मंत्र मुद्रा और ध्यानसे सदा पूजा करनी चाहिये। अन्यथा हरि की पूजा न करे। आवाहन को छोड़कर तत्तन्मूर्ति, तत्तन्मंत्र से ही पूजा होती है।

नित्यप्रति पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा इत्यादि) से सभी शिलाओंकी पूजा करनी चाहिये। आवाहन की जगहपर वैदिक मंत्र से हरिभगवान् को पुष्पाञ्जली चढ़ावे एवं रीत्या उनको सम्बोधन के लिये भी वैदिक मंत्र का प्रयोगकरे। विसर्जन की जगह पर भी पूजा की सांगता सिद्धि के लिये दूसरी वार पुष्पाञ्जली चढ़ावे। इत्यादि। यह बात तो प्रसंग से कही गयी॥

ग्राह्याग्राह्यशालग्रामों के सभेद लक्षण समाप्त हुए।

अब आगे से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातिके भेद से शालग्राम शिला सम्बन्धि पूज्य मूर्तियां और उनके अधिकारी उनकी संख्या वगैरह सब बताये जाते हैं। विष्णुधर्मोत्तर खण्ड पर हेमाद्रि में कहा है कि—ब्राह्मणों को वासुदेव की, क्षत्रियों को सङ्कर्षण की, वैश्यों को प्रद्युम्न और शूद्रों को अनिरुद्ध की पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण उक्त चारों मूर्त्तियों की, क्षत्रिय तीन की, वैश्य दुई मात्र की एवं शूद्र अन्तिम एक की पूजा कर सकते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शूद्रजातिभिरिति ॥ ब्रह्माण्डपुराणे--वासुदेवो विप्रजनैरुपास्यः पूजये त्सदा । सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्धश्च यथाक्रमम् ॥ क्षत्रादिभिः पूजनीयाः सर्वकामफलप्रदाः । विप्राणां मूर्त्तयस्सर्वाः पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

पुराणसङ्ग्रहेऽपि—वासुदेवोब्राह्मणस्य पूजनीयोऽखिलेष्टदः । सङ्कर्षणः क्षत्रियस्य प्रद्युम्नो वैश्यपूजितः ॥ अनिरुद्धस्तु शूद्राणाम्पूज्यस्सर्वफलप्रदः । विप्राणाम्मूर्त्तयस्सर्वाः पूजनीयाः प्रयत्नतः । क्षत्रियस्य त्रयः पूज्या वैश्यानां द्वयमेव च ॥ शूद्रस्यैका भवेत्तार्क्ष्य सर्वदा सर्वसिद्धये इति ।

वृद्धगौतमेन तु विशेषोऽभिहितः । लक्ष्मीनारायणा १ ऽनन्त २ नृसिंहा ३ ऽच्युत ४ केशवाः ५ । हिरण्यगर्भ ६ प्रद्युम्न ७ गोपाल ८ गरुडध्वजाः ९ ॥ रामा १० ऽनिरुद्धा ११ वक्रास्य १२ दामोदर १३ गदाधराः १४ । चतुर्भुज १५ महानील १६ मुकुन्द १७ पुरुषोत्तमाः १८ ॥ पीताम्बर १९ हरिब्रह्म २० कृष्ण २१ श्रीधर २२ माधवाः २३ । वासुदेवे २४ ति विख्याताश्चतुर्विंशत्तथा शिलाः । वक्रास्यो वक्रं सुग्नमास्यं यस्य स हयग्रीव इत्यर्थः । महानीलो वामनः । वामनश्चातिह्रस्वश्च महानीलः

ब्रह्माण्डपुराण का प्रमाण है कि— ब्राह्मण लोग वासुदेव की सदा पूजा और उपासना करें । और क्रमशः सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के लिये हैं वे सर्वाभीष्टफलदायक हैं । कहने का मतलब यह है कि ब्राह्मणों के लिये तो सभी मूर्त्तियां यत्न पूर्वक पूजनीय होती हैं । इत्यादि ॥ पुराणसंग्रह पर लिखा है कि—ब्राह्मण के लिये पूजनीय सर्वाभीष्ट फलदायक वासुदेवजी ही हैं । तथा क्षत्रिय के पूज्य सङ्कर्षण, वैश्यों के प्रद्युम्न और शूद्रों के अनिरुद्ध हैं । वे सभी शुभ फल के दायक हैं ब्राह्मणों की सभी मूर्त्तियां विशेष यत्न से पूजनीय होती हैं बची तीन क्षत्रियों की और दो वैश्यों की इस प्रकार हे गरुडजी ! सर्वार्थ सिद्धि के लिये शूद्रों की एक अन्तिम मूर्त्ति मात्र सदा पूज्य होती है ।

इसपर वृद्धगौतमजी ने कुछ विशेष बताया है कि—निम्नलिखित चौबीस प्रकारकी शिलायें वासुदेव के नाम से कही जाती हैं । वे ये हैं—लक्ष्मीनारायण १ अनन्त २ नृसिंह ३ अच्युत ४ केशव ५ हिरण्यगर्भ ६ प्रद्युम्न ७ गोपाल ८ गरुडध्वज ९ राम १० अनिरुद्ध ११ वक्रास्य १२ दामोदर १३ गदाधर १४ चतुर्भुज १५ महानील १६ मुकुन्द १७ पुरुषोत्तम १८ पीताम्बर १९ हरिब्रह्म २० कृष्ण २१ श्रीधर २२ माधव २३ और वासुदेव २४ ॥ वक्रास्य कहते हैं टेढ़ेमुखवाले को अत एव वक्रास्य हयग्रीव जी हैं । महानील = वामन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबिन्दुक इत्यग्निपुराणलक्षणवाक्यात्। ब्रह्मेति हरेर्विशेषणम्।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रयतीनामिष्टदोऽर्च्चितः।
त्रिवर्णस्याधमानां च न जात्वखिलयोषिताम्॥

तत्रादौ ब्राह्मणपूज्या मूर्त्तय उच्यन्ते।

शिलाश्चैकद्विषष्ठाष्टादशपञ्चदशान्विताः। पूजार्हास्सर्वदाद्यानाङ्गण्डकीसरिदुद्भवाः॥ लक्ष्मीनारायणानन्तहिरण्यगर्भपुरुषोत्तमचतुर्भुजसञ्ज्ञाः शालग्राममूर्त्तय आद्यानां ब्राह्मणानां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ क्षत्रियाणां पूज्या मूर्त्तयः

राज्ञामाद्यद्वयेकविंशदेकादशनवाष्टमीः। दश द्वाविंशतितमास्सर्वदाऽभीष्टदायकाः॥ लक्ष्मीनारायणानन्तकृष्णानिरुद्धगरुडध्वजगोपालराम श्रीधरसञ्ज्ञामूर्त्तयः क्षत्रियाणां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ वैश्यानां पूजनीया मूर्त्तयः

चतुर्विंशतिसप्तैव त्रयोदश चतुर्दश। एकोनविंशविंशैका नित्ययोग्या

वामन खूब छोटे बिन्दु वाले और महानील होते हैं, क्योंकि ऐसा अग्निपुराण पर लक्षण वाक्य में वामनजी को महानील बताया है। हरिब्रह्म पर जो ब्रह्मशब्द है वह हरिशब्द का विशेष्य है। वासुदेवजी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और संन्यासी में सब के लिये पूजाकरने से कामनानुसार फलदायक होते हैं। तीनों वर्ण और अन्त्यजों के भी पूज्य होते हैं। औरतों के कभी नहीं।

उनमें से पहले ब्राह्मण पूज्य मूर्तियाँ कही जाती हैं।

ब्राह्मणों को सर्वदा गण्डकी नदी में उत्पन्न एक, दो, छः, आठ, अट्ठारह वा पन्द्रह-संख्या की शालग्राम शिलाओं की पूजा करनी चाहिये। अर्थात् उक्त चौबीस शिलाओं में पहली शिला लक्ष्मीनारायण १ अनन्त २ एवं क्रमशः हिरण्यगर्भ ६ पुरुषोत्तम १८ चतुर्भुज १५ इन नाम की शिलाएँ पूजक ब्राह्मणों के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

क्षत्रियों की पूज्य मूर्तिया—

क्षत्रियों के लिये सर्वदा अभीष्ट फलदायक पूज्य मूर्तियाँ ये हैं—पहली, दूसरी, एक्कीसवीं, एग्यारहवीं, नवीं, अठवीं, दशवीं और बाईसवीं। अर्थात् लक्ष्मीनारायण २ अनन्त २१ कृष्ण ११, अनिरुद्ध ९ गरुडध्वज ८ गोपाल १० राम २२ इन श्रीधर २२ मूर्तियों की पूजा करना क्षत्रियों के लिये खूब अच्छा होता है॥

वैश्यों की पूज्य मूर्तियाँ—

वैश्यों के लिये चौबीसवीं, सातवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, उन्नीसवी, बीसवीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिला विशाम् ॥ वासुदेवप्रद्युम्नदामोदरगदाधरपीताम्बरहरिलक्ष्मीनारायण संज्ञा मूर्त्तयो वैश्यानां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ सच्छूद्राणामर्चनीया मूर्तयः

त्रयोविंशैकविंशैकतुर्यैकादशमूर्तयः।
पञ्चमैकोनविंशास्स्युस्सच्छूद्राणां फलप्रदाः॥

माधवकृष्णलक्ष्मीनारायणाच्युतानिरुद्धकेशवपीताम्बरसञ्ज्ञामूर्त्तयः सच्छूद्राणां पूजायामतीव शुभदास्युरित्यर्थः।

चतुर्विंशतिमूर्त्तिष्वेवावशिष्टामूर्त्तयो नृसिंहहयग्रीवमहानीलमुकुन्दसञ्ज्ञा यतीनां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति नचान्येषां कदाचन॥

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रा ब्राह्मणाः क्षत्रियोदयः। पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदमिति।

और पहली मूर्तियाँ पूजनकरने में अच्छी होती हैं।

अर्थात् वासुदेव २४ प्रद्युम्न ७ दामोदर १३ गदाधर १४ पीताम्बर १९ हरि २० लक्ष्मीनारायण १ वैश्यों की पूज्य इतनी प्रकार की मूर्तियाँ श्रेष्ठ होती हैं॥

सच्छूद्रों की पूज्य मूर्तियाँ—

सच्छूद्रों के लिये फलदायक मूर्तियाँ ये हैं—

तेईसवीं, एक्कीसवीं, पहली, चौथी, ग्यारहवीं, पचईं, और उन्नीसवीं। अर्थात् माधव २३ कृष्ण २१ लक्ष्मीनारायण १ अच्युत ४ अनिरुद्ध ११ केशव ५ और पीताम्बर १९ इन नाम की मूर्तियां सच्छूद्रों के लिये अत्युत्तम शुभ फल दायक होती हैं।

इन चौबीस से बची हुई नृसिंह, हयग्रीव, महानील (वामन) और मुकुन्द नाम की मूर्तियाँ सन्यासी लोग के लिये पूजा करने में अत्युत्तम मानी गयी हैं।

पूजकों का अधिकार—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सच्छूद्रों का ही शालग्राम शिला की पूजामें अधिकार है और लोगों का कभी नहीं।

प्रमाणान्तर--

चाहे स्त्रियाँ हों चाहे शूद्र वा ब्राह्मण, क्षत्रिय और आदिपदेन वैश्य ही क्यों न हो वे सब शालग्राम शिला चक्र की पूजा करके शाश्वत गति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि। स्त्रीशूद्रयोः करस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः ॥ पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः। शालग्रामशिलायां तु पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ वाराहं नारसिंहं च हयग्रीवं च वामनम्। ब्राह्मणः पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्त्तिंच केशवम् ॥ क्षत्रियः पूजयेद्रामं केशवम् मधुसूदनम्। नारायणं वासुदेवं वैश्यः सम्पूजयेत्तथा। बालगोपालवेषं च पूजयेत्स्त्री च शूद्रकः। द्विजानामेव नान्येषां शालग्रामशिलार्चनम् ॥ स्थण्डिले हृदयेवाऽपि पूजयेच्छूद्रयोनिजः। बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेच्च द्विजः सदेति हारीतवचनाच्च। ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्नपूजयेदिति विष्णुधर्मोत्तरवाक्यात्। प्रणवोच्चारणाच्चैव शालग्रामशिलार्चनात्। ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेदित्यापस्तम्बवचनात्।

अब यहाँ पर कुछ बातों का विचार किया जाता है। शङ्का उठती है कि "ब्राह्मण चाहे शुद्ध हो वा अशुद्ध ही क्यों न हो किन्तु मैं उसी का पूज्य हूँ, स्त्री और शूद्र की तो बात ही न कीजिये क्योंकि उनका करस्पर्श मात्र भी मुझे वज्र स्पर्श से भी अधिक असह्य लगता है। यहां पर क्षत्रिय और वैश्यों के लिये बात नहीं आई क्योंकि वर्तमान मे वे विरले ही होते हैं। लेकिन जो हैं उनका अधिकार आगे जाकर बताया जायगा—

पञ्चसंस्कार (जातकर्म १ नामकरण २ चूड़ा कर्म ३ मौञ्जीवन्धन ४ और उपनयन ५) से युक्त मंत्र रत्नों का ज्ञाता पुरुषही शालग्राम शिलापर पुरुषोत्तम जी की पूजा करे, अर्थात् ब्राह्मण वराह, नृसिंह, हयग्रीव, वामन, विष्णु, यज्ञमूर्ति और केशव की पूजा करें। क्षत्रिय राम, केशव, मधुसूदन, नारायण, वासुदेव इन मूर्तियों की पूजा करे तथा वैश्य भी बालगोपाल मूर्ति की पूजा तो स्त्रियाँ और शूद्र भी कर सकते हैं। परन्तु खास बात तो यह है कि उनको द्विज कहते हैं जो जन्म और संस्कार से निवृत्त हैं अर्थात् जनेऊ वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) द्विजातियों का ही शालग्राम शिलाकी पूजा में अधिकार होता है शूद्र पूजा करना चाहे तो चबूतरे वा हृदय पर (उनकी कल्पना करके) पूजा कर सकता है। द्विजलोग बालकृष्ण स्वरूपधारी भगवान की सदा पूजा करें", हारीतजी के इस वचन से और "ब्राह्मण नित्य पूजा करे, क्षत्रियादि न करें", विष्णुधर्मोत्तर के इस वाक्य से और भी—"ॐकार का उच्चारण, शालग्राम शिला की पूजा और ब्राह्मणी पर गमन करने से शूद्र हो तो चाण्डाल हो जाता है",

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रकान्त.

प्रथम-भाग हिन्दी

कर्ता—

स्व. इच्छाराम सूर्यराम देसाई

प्रकाशक

'गुजराती' प्रिन्टिंग प्रेस

सासुन बिल्डिंग, एल्फिन्स्टन सर्कल, फोर्ट, मुंबई

कि. रु. ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

PREFACE

I venture to present herewith the text of the *Hetutattvopadeśa*, a treatise on Buddhist Nyāya, in its Sanskrit version as reconstructed by me from the Tibetan translation of the work, as well as a critical edition of the latter. The Tibetan text is prepared by the collation of the xylographs of the Tanjur in their Narthang and Peking editions. The xylographs are further referred to as NX (Narthang edition of the xylograph) and PX (Peking edition of the xylograph); X indicates both the xylographs. The references to folios and lines in the printed text are according to the Narthang edition (Mdo. Ze, folios, 344^{b6}-354^{a4}; Cordier: *Catalogue du Fonds tibétain*, III, p. 545). For the Narthang edition I have used the xylographs belonging to the Visvabharati, the Calcutta University, and the Royal Asiatic Society of Bengal. The collation with the Peking edition in the Bibliothèque Nationale, Paris, was kindly made for me by Mlle. Lalou, which was arranged by the late Prof. Sylvain Lévi and Dr. Prabodh Chandra Bagchi of the Calcutta University. To all of them I owe a deep debt of gratitude.

The work was originally undertaken while I was working as a Reṣearch Student (1927) in the Viṣvabharati, Santiniketan under the inspiring guidance of Pandit Vidhushekhara Bhattacharya. It was completed during the first year of my tenure of the Government of Bengal Research Scholarship (1928-29) in the Royal Asiatic Society of Bengal. In

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

this connection I take the opportunity of recording my grateful thanks to its General Secretary, Mr. Johan Van Manen, C.I.E. My respectful thanks are also due to my revered Ācārya, Dr. Satkari Mukherji, M.A., Ph.D. of the Calcutta University, who elucidated to me many a knotty point in the text.

I am also indebted to my teacher, Prof. Mohinimohan Mukherji, M.A. of Asutosh College and to my friends, Mr. Gopinath Bhattacharya, M.A., P.R.S. of Sanskrit College and Mr. Satindra Kumar Mukherji, M.A., as well as to Lama Lobzang Mingyur Dorje, the Tibetan Instructor of the Calcutta University, who helped me in various ways in connection with the work.

The present work may not be an outstanding contribution in itself, but it has at least this much importance to me that it serves as a humble token of my obligations to the two great institutions : the Visvabharati which offered me the first opportunity of being initiated into Tibetan studies, and my *Alma Mater*, the University of Calcutta, which has included the work among its publications.

BETHUNE COLLEGE,
May, 1939.

DURGACHARAN CHATTOPADHYAYA

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ABBREVIATIONS

BC	Bodhicaryāvatāra with Pañjikā, Bibliotheca Indica.
HIL	History of Indian Logic by Vidyābhūṣaṇa, Calcutta University.
NB	Nyāyabindu, Bibliotheca Buddhica.
NM	Nyāyamañjarī, Vizianagram Sanskrit Series.
NP	Nyāyapraveśa, Part II, Gaekwad's Oriental Series.
NS	Nyāyasūtra, Chowkhamba Sanskrit Series.
NSR	Nyāyasāra, Bibliotheca Indica.
NV	Nyāyavārttika, Chowkhamba Sanskrit Series.
NVT	Nyāyavārttikatātparayaṭīkā, edited by Pandit Rājeśvara Śāstrī Drāviḍa, Chowkhamba Sanskrit Series.
PB	Praśastapādabhāṣya, Vizianagram Sanskrit Series.
PM	Pramāṇamīmāṃsā, Ārhatamataprabhākara Series.
PN	Pramāṇanirṇaya, Māṇikacandadigambaragranthamālā.
PNT	Pramāṇanayatattvālokālaṃkāra, Yaśovijayajainagranthamālā.
PS	Parīkṣāmukhasūtra, Bibliotheca Indica.
ṢDS	Ṣaḍdarśanasamuccaya with Guṇaratna's Tarkarahasyadīpikā, Bibliotheca Indica.
SDS	Sarvadarśanasaṃgraha, Bhandarkar Oriental Research Institute.
ŚS	Śikṣāsamuccaya, Bibliotheca Buddhica.
TS	Tattvasaṃgraha, Gaekward's Oriental Series.
VB	Vātsyāyanabhāṣya, Chowkhamba Sanskrit Series.
VP	Vaiśeṣika Philosophy by H. Ui.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

INTRODUCTION

The *Hetutattvopadeśa,* called in Tibetan *Gtan.tshigs.kyi.de. kho.na.ñid.bstan.pa* is a small treatise on Buddhist logic. As has been the case with most of the Buddhist Nyāya texts, the Sanskrit original of the *Hetutattvopadeśa* has not yet been found and until any manuscript of it is discovered, it can be taken as lost. But fortunately for us the work has been preserved in Tibetan translation which, as is well known, has saved from oblivion an immense mass of Indian literature.

From the colophon of the Tibetan translation, it appears that Jetāri was the author of the original work and it was translated into Tibetan by the Indian Paṇḍita Kumārakalaśa in collaboration with a Tibetan interpretor, Bhikṣu Śākya-prabha (*Lo.tsā.ba. dge.sloṅ. Śākya.ḥod*). As for the name Jetāri, we would prefer to change it to Jitāri as given in the colophon of the *Jātinirākṛti,* a Nyāya tract in Sanskrit, ascribed to him (*Jātinirākṛti of Jitāri* by Prof. G. Tucci, Ph.D., *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute,* Poona, Vol. XI, pp. 54 ff.).

Jitāri, was a great Buddhist teacher and received the title of *Paṇḍita* of the *Vikramaśilā* University from King Mahāpāla. Being thus a contemporary of Mahāpāla who reigned up to 940 A.D. as well as of Dīpaṅkara, born in 980 A.D., whom he taught in his young age, Jitāri may be placed in the latter half of the 10th Century (HIL, p. 337). It is difficult to ascertain with exactness the amount of his literary contributions,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

but on the authority of the Tanjur the authorship of several Nyāya and Tantra treatises is fathered upon him. Besides the *Hetutattvopadeśa*, two other logical treatises of him are also apparently lost in their original Sanskrit, but are extant in their Tibetan translations, one of them being *Dharmadharmiviniścaya*, in Tibetan *Chos.daṅ.chos.can.gtan.la.dbab.pa*, and the other, *Bālāvatāratarka*, in Tibetan *Byis.pa.ḥjug.paḥi.rtog.ge*, contained in the Tanjur (Cordier: *Catalogue du Fonds tibétain*, Vol. III, pp. 454-455).

The *Hetutattvopadeśa* is a short catechism rather than a comprehensive work on Buddhist logic. The introductory verse, which is common to it as well as NP, suggests that it has been written in the manner of the latter. The problems have been classified into *sādhana* (demonstration), *dūṣaṇa* (refutation), *pratyakṣa* (perception) and *anumāna* (i.e. *svārthānumāna*—inference for one's own sake) along with their fallacies. While noticing the work in his HIL (p. 337) Dr. Vidyābhūṣaṇa says that the title *Hetutattvopadeśa* signifies 'instruction on the real nature of the middle term in a syllogism'. But this is evidently an oversight, as our text sets out to discuss the problems which cover almost the entire scope of any work on logic. *Hetu* is here used in the wider sense of reasoning or logic in general (cf. *hetuśāstra* in Manu, II. 11) and not in the special sense of the mark (*liṅga*) or the middle term of a syllogistic reasoning.

Jitāri, coming as he does after Diṅnāga and Dharmakīrti, has been influenced by both of them. By taking *kalpanā* in the sense of the association of an object with name (*nāma*), 'universal' (*jāti*), and the like, and adding *abhrānta*, he combines the views of both Diṅnāga and Dharma-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

CONTENTS

	Page
Preface	v
Abbreviations	vii
Introduction	ix
Analysis	xiii
Part I, Reconstructed Sanskrit Text	1
Part II, Tibetan Text	25
Part III, Notes	65

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ཧགས་སུ་ གྲུབ་སྟེ་ མངོན་སུམ་ རྟོགས་པ་ དང་། མངོན་སུམ་ བློ་ དང་ མངོན་སུམ་[3] ཤེས་པ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ རིགས་པར་གྱུར་པ་ ཡིན་ནོ ༎

༡༡. མིག་ དང་ རྣ་བ་ དང་ སྣ་ དང་ ལྕེ་ དང་ ལུས་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ དབང་པོ་ ལྔ་ སྟེ། དེ་ལ་བརྟེན་པའི་ ཤེས་པ་ ལྔ་ ནི་ གཟུང་པའི་ཡུལ་ གཟུགས་ དང་ སྒྲ་ དང་ དྲི་ དང་ རོ་ དང་ རེག་བྱ་ དང་ ཞེས་བྱ་བ་ གསལ་བྱ་ ལྔ་ ཉིད་[4] འཚོད་མ་ ཡིན་ནོ ༎

༡༢. མངོན་སུམ་ དེ་ ཡང་ མིང་དང་རིགས་ལ་སོགས་པའི་རྟོག་པ་ དང་བྲལ་པ་ འམ། རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་ དང་། གལ་ཏེ་ ཡང་ འཁྲུལ་པར་མ་གྱུར་པ་ ཡིན་ན་ ཚད་མར་ བཤད་དེ། བསྟན་པའི་དོན་ལ་ མི་བསླུ་བའི་ཕྱིར་རོ ༎

༡༣. [5] དེ་ལ་ མིང་[1] གི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ ནི་ འདི་ནི་ ལྷས་བྱིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བར་ ཤེས་པའོ། རིགས་ཀྱི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ ནི་ འདི་ ནི་ བ་ལང་ངོ་ སྙམ་དུ་ ཤེས་པའོ ༎ ཁྱད་པར་དང་ཁྱད་པར་དུ་བྱ་བའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ ནི་ ཨུཏྤ་ལ་ སྔོན་པོ་ ཞེས་པའོ། གཞན་[6] ཡང་

1 X མིག.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

རྣམ་པར་རྟོག་པར་དང་བཅས་པའི་ མངོན་སུམ་ལྟར་སྣང་བ་ དང་། ཡོད་ དོན་ལ་ འཁྲུལ་པ་ རབ་རིབ་[པ་] ཀྱི་ ཟླ་བ་གཉིས་སུ་ཤེས་པ་ དང་། ཉ་ཕྱིས་ལ་ དངུལ་དུ་ཤེས་པ་ དང་། འདི་ ནི་ སྔོང་དུས་ ནས་ སྐྱེས་ བུའོ་ ཞེས་པ་ ཡིན་ནོ། ཤེས་པ་[7] གཞན་ ཡང་ མངོན་སུམ་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ། བསྟན་པའི་དོན་དང་ཕྲད་པར་མི་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༡༧. དེ་ལ་ མངོན་སུམ་ ནི་ རྣམ་པ་གསུམ་ སྟེ། ཐ་སྙད་འདོགས་ པའི་ དབང་པོའི་ཤེས་པ་ དང་། སེམས་དང་ སེམས་ལས་བྱུང་བ་ ཐམས་ཅད་[353a1] རང་གི་ངོ་བོ་རིག་པ་ ནི་ རང་རིག་པ་དང་། ཡང་ དག་པའི་ དོན་བསྒོམས་པས་ གསལ་བ་རབ་[1] ཀྱི་མཐར་ཐུག་པ་ ནི་ རྣལ་ འབྱོར་གྱི་ ཤེས་པའོ།།

༡༨. དེའི་ ཡུལ་ ནི་ རང་གི་མཚན་ཉིད་དེ། དོན་[2]བྱེད་པར་ནུས་ པ་སྟེ། [2]རང་གི་མཚན་ཉིད་ལ་བྱའོ།། སྤྱིས་ ནི་ དོན་བྱེད་པར་ནུས་པ་ མ་ཡིན་ནོ།།

༡༩. དེ་ དག་ཉིད་ ཀྱང་ མངོན་སུམ་གྱི་ ཚད་མ་ ཡིན་ནོ།། དོན་

---

1 X adds རིབ.

2 X གནོད.

རྟོགས་པའི་ ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ འབྲས་བུ་ ཡང་ ཡིན་ཏེ། དེ་དང་འདྲ་བ་ཚད་མ་དང་འབྲས་བུ་ལ་[3] བྱེ་བྲག་ཅུང་ཟད་ ཀྱང་ མེད་དོ།།

༩༧. རྗེས་སུ་དཔག་པ་ ནི་ རྣམ་པ་གཉིས་ ཏེ། རང་གི་དོན་ དང་ གཞན་གྱི་དོན་ ནོ། །

༩༨. དེ་ལ་ རང་གི་དོན་ ནི་ རེ་ཞིག་ ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་ གཟུང་ནས། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་འབྲེལ་པ་དྲན་པའི་[4] རྗེས་ལ་ རྟོགས་[1] པ་པོས་ དོན་ ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ རྟོགས་པ། གང་ ཡིན་པ་ དེ་ཉིད་ རང་གི་དོན་ གྱི་ རྗེས་སུ་དཔག་པ་ ཡིན་ནོ།།

༩༩. ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་ རྣམ་པ་གསུམ་ ཉིད་དུ་ འགྱུར་ཏེ། འབྲས་བུ་ དང་ རང་བཞིན་ དང་ མི་དམིགས་ པའོ།།

༡༠༠. [5]རྒྱུ་དང་འབྲས་བུར་གྲུབ་ན་ འབྲས་བུའི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་པར་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན་ གང་ན་ དུ་བ་ ཡོད་པ་ན་ མེ་ ཡོད་དེ། དཔེར་ན་ ཚང་མང་[2] ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ། འདི་ན་ ཡང་ དུ་ བ་ ཡོད་

---

1 X རྟགས.

2 X ཚ་བ for ཚང་མང.

པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ ॥ མེ་མེད་ན་ དུ་བ་ཡང་[6]མེད་དེ ། དཔེར་ན་ ཆུ་དང་བཅས་པའི་ ཕྱོགས་ ལྟ་བུའོ ॥ འདི་ན་ ཡང་ དུ་[1]བ་ཡོད་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ ॥

༡༠༡. རང་བཞིན་གྱི་གཏན་ཚིགས་ ནི་ འདི་ ནི་ ཤིང་ ཡིན་ཏེ ། ཤིང་ཤ་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ སྔོན་ཕ་སྐྱེད་ཞུགས་པའི་ ཤིང་[7]ཤ་པ་ བཞིན་ནོ ॥ ཤིང་མེད་ན་ ཤིང་ཤ་པ་མེད་དོ། དཔེར་ན་ ཤིང་གིས་ དབེན་པའི་ཕྱོགས་བཞིན་ནོ ॥ འདིར་ ཡང་ ཁྱབ་པར་བྱེད་པའི་ ངོ་བོ་ དེས་ན། ཁྱབ་པར་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་པར་ལྟའོ ॥

༡༠༢. མི་དམིགས་པའི་[353b1]གཏན་ཚིགས་ ནི ། འདི་ན་ བུམ་པ་ མེད་དེ ། དམིགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཐོབ་[1]གྱུར་པ་ མི་དམིགས་པའི་ཕྱིར་ཏེ ། རི་བོང་གི་རྭ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ ॥ འདིར་ཡང་ དམིགས་ སུ་ རུང་བ་ [མི་]དམིགས་པ་ལ ། དམིགས་སུ་རུང་བ་མེད་པས་ཁྱབ་[2]པར་ གལ་ཏེ་ ངེས་ན་ དེའི་ཚེ་ གཏན་ཚིགས་ འདི་རྟོགས་པར་ བྱེད་པ་ ཡིན་ནོ ॥

༡༠༣. རྗེས་སུ་དཔག་པ་ལྟར་སྣང་བ་ ཅི་འདྲ་བ་ཞིག་ཅེ་ན ། སྤྱ་མ་

1 X ཀྱིར.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

དང་ལྡན་པ་ དང་ ལྡོག་མ་དང་ལྡན་པ་ དང་ ། སྤྱི་་མཐོང་བ་སྟེ ༎ གཞན་གྱིས་བརྟགས་པའི་ རྗེས་སུ་དཔག་[3]པ་ ཐམས་ཅད་ ནི་ རྗེས་སུ་དཔག་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ ། དེ་རྣམས་ལ་ དེའི་བདག་ཉིད་དང་དེ་ལས་བྱུང་བའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་ འབྲེལ་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ ༎ རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་འབྲེལ་པ་ དང་ ། ཁྱབ་པར་བྱ་བ་དང་ཁྱབ་པར་བྱེད་པའི་འབྲེལ་པ་[4] གྲུབ་བ་ ཉིད་དུ་ གྱུར་ན ། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་འབྲེལ་པ་ ཡིན་གྱི ། གཞན་དུ་ ནི་ མ་ཡིན་ཏེ་ བསྒྲུ་བ་[1]པའི་ཕྱིར་རོ ༎

༡༠༣. དཔེར་ན་ སྤྲིན་ འདི་ ཆར་ལྡན་[2]བལྟུས་པ་ཡིན་ཏེ ། འབྲུག་སྒྲ་ཟབ་མོ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ ༎ ཞེས་བྱ་[5]བ་ལ ། སྒྲ་ཟབ་མོ་དང་འདྲ་བའི་ སྤྲིན་ལས་ ཆར་མི་འབྱུང་བ་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ །

༡༠༤. དཔེར་ན ། སྟེང་དུ་ ཆར་བབ་པ་ ཡིན་ཏེ ། གཙང་པོ་རྒྱས་པ་མཐོང་བའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལ ། གཙང་པོ་འགགས་པ་ལས་ཀྱང་ ཆུ་བོ་རྒྱས་པར་ མཐོང་བའི་[6]ཕྱིར་རོ ༎

---

1 X adds མེད.

2 X ལྟར.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

༡༠༦. དེ་བཞིན་དུ་ འབྲས་[1] འདི་དག་ ནི་ ཚོས་པ་ཡིན་ཏེ།
ཕྲུ་བ་ཅིག་གི་ནང་ན་ཡོད་པའི་ཕྱིར་ མཐོང་བའི་འབྲས་བཞིན་ནོ།།

༡༠༧. འབྲས་བུ་ འདི་དག་ ནི་ སྨིན་པ་ ཡིན་ཏེ་ ཡལ་ག་གཅིག་ ལས་ སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་ ཟོས་པའི་འབྲས་བུ་བཞིན་[7] ཞེས་བྱ་བ་ལ་ འདིར་ ཕལ་ཆེར་ དེ་ལྟར་ མཐོང་ ཡང་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་ པ་དག་ལ་ ནི་ བསླུ་བ་ ཡོད་པ་ ཁོ་ནའོ།།

༡༠༨. དཔེར་ན་ གང་ ས་ལ་སྐྱེས་པ་ དེ་དག་ ཐམས་ཅད་ནི། ལྕགས་ཀྱི་གཅོད་པར་ མཐོང་སྟེ། དཔེར་ན་ ཤིང་ལ་སོགས་པའི་[354a1] བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལ་ རྡོ་རྗེ་ ཡང་ ས་ལས་ སྐྱེས་པ་ ཡིན་ནོ།།

༡༠༩. གང་ སྲོག་ཆགས་ ཡིན་པ་ དེ་དག་ ཐམས་ཅད་ནི། མགྲིན་ པ་དང་བཅས་པ་ ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ ཇ་མོ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ།། བསྟན་བྱ་བ་ལ། ཀུ་ལི་[2]ར་[2]ཡང་ སྲོག་ཆགས་ ཡིན་ནོ།།

༡༡༠. དཔེར་ན་ གང་ ཞུ་བའི་ རྫས་ དེ་ ནི་ རླན་ གྱིས་པར་ མཐོང་

---

1 X adds བུ.

2 NX ཀུན་ནའི.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

སྟེ། དཔེར་ན་ ཆུ་བཞིན་ནོ། ཞེས་བྱ་བ་ལ་ དངུལ་ཆུ་ ཡང་ ཞུ་བའི་ རྫས་ ཡིན་ བཞིན་ནོ༎

༡༡༡. དེ་བཞིན་དུ་ གཞན་དག་ ཀྱང་ རྗེས་སུ་དཔག་པ་ལྟར་སྣང་བ་ [3]ཡིན་པ་ བལྟ་བར་བྱའོ༎

གཏན་ཚིགས་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྟན་པ།

མཁས་པ་ཆེན་པོ་ ཛེ་ཏ་རིའི་ ཞལ་སྔ་ནས་ མཛད་པ་ རྫོགས་སོ༎

རྒྱ་གར་གྱི་མཁན་པོ་ པཎྜི་ཏ་ ཀུ་མཱ་ར་ ཀླ་ཤ་དང་། [4]ལོ་ཙཱ་བ་དགེ་སློང་ ཤཱཀྱ་འོད་ཀྱིས་ བསྒྱུར་ཅིང་ ཞུས་ནས་ གཏན་ལ་ཕབ་པའོ༎

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

kīrti in his definition of *pratyakṣa* (see §§ 90 & 92, Text and Notes). Corresponding to *dharmaviśeṣaviparītasādhana* in NP, § 37 Jitārī mentions *dharmisvarūpaviparītasādhana* (§ 51) as a kind of *viruddha hetvābhāsa*. On this point he does not follow Dharmakīrti who criticizes Diṅnāga's recognition of this fallacy as a distinct kind under the name of *iṣṭavyāghātakṛd viruddha* (NB., III. 89 ff.) As opposed to Diṅnāga but following Dharmakīrti (NB, III. 112 ff.) Jitāri does not like to reckon *viruddhāvyabhicārin* as *hetvābhāsa* (§ 55). The total number of fallacies, according to Jitāri, is fifty, *pakṣābhāsas* being eight, *hetvābhāsas* twentyfour, and *dṛṣṭāntābhāsas* eighteen. In illustrating fallacies he has thus surpassed both Diṅnāga and Dharmakīrti and evinced a fondness for analysis and details. One would, however, be amused to know that some Buddhist logicians elaborated a scheme of 'Ten Thousand Fallacies' (Sugiura: *Hindu Logic as preserved in China and Japan*, p. 59).

It may be noted here that some of the examples of fallacies given by the Buddhist logicians represent the doctrines of the rival schools, introduced for the purpose of exposing their fallacious character. Moreover, there are some stock examples of reasoning, both valid and invalid, to be met with equally in the writings of the Buddhist, Jaina, and Brahmanic logicians. Thus the example of *lokaviruddha pakṣābhāsa* can be found in NP, NV, and PS (see Notes § 15, *infra*). So also the stock proposition, 'Sound is non-eternal, because it is produced' (*śabdo 'nityaḥ kṛtakatvāt*) has been commonly used by most of the logicians.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

One thing worth noting is that instead of the four kinds of *pratyakṣa* (perceptual cognition) as in NB, Jitāri enumerates only three: *indriyajñāna, svasaṃvedana* and *yogijñāna*. His omission of *manovijñāna* is significant. He rejects it probably on the ground that it is based more on authority (*siddhāntaprasiddha*) than on logic (*pramāṇaprasiddha*); see Notes § 94, *infra*.

Jitāri criticises the *pūrvavat, śeṣavat* and *sāmānyatodṛṣṭa* inferences as found in NS (1.1.5.) on the ground of the absence of invariable concomitance between the *probans* and the *probandum*, based on the relation of causality or identity (*teṣām tādātmyatadut-pattilakṣaṇena pratibandhābhāvāt*, § 103). This criticism reminds one of what has been set up as the *pūrvapakṣa* by the author of NS in course of his discussions on the validity of inferential argument (NS, II. 1. 37-38).

The text on the whole represents the position of logic as interpreted by Diṅnāga and Dharmakīrti, the two doyens of Buddhist logic and philosophy.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ANALYSIS OF THE TEXT

§ 1. བསྟན་བཅོས་ཀྱི་དོན་བསྡུས་པ, शास्त्रार्थसंग्रहः ।

བསྒྲུབ, साधनम् ।

བསྒྲུབ་པ་ལྟར་སྣང་བ, साधनाभासः ।

སུན་འབྱིན་པ, दूषणम् ।

སུན་འབྱིན་པ་ལྟར་སྣང་བ, दूषणाभासः ।

མངོན་སུམ, प्रत्यक्षम् ।

མངོན་སུམ་ལྟར་སྣང་བ, प्रत्यक्षाभासः ।

རྗེས་དཔག, अनुमानम् ।

རྗེས་དཔག་ལྟར་སྣང་བ, अनुमानाभासः ।

§ 2. བསྒྲུབ་པ, साधनम् ।

§ 3. གཏན་ཚིགས, हेतुः ।

§ 4. ཕྱོགས, पक्षः ।

§ 5. མཐུན་པའི་ཕྱོགས, सपक्षः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

§ 6. མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས, विपक्षः।

§ 7. གཞན་གྱི་དོན་རྗེས་སུ་དཔག་པ, परार्थानुमानम्।

§§ 8-10. ཆོས་མཐུན་པ, साधर्म्यम्।

ཆོས་མི་མཐུན་པ, वैधर्म्यम्।

§ 11. ཕྱོགས་ལྟར་སྣང་བ, पक्षाभासः।

§ 12. མངོན་སུམ་དང་འགལ་བ, प्रत्यक्षविरुद्धः।

§ 13. རྗེས་སུ་དཔག་པ་དང་འགལ་བ, अनुमानविरुद्धः।

§ 14. རང་གི་ཚིག་དང་འགལ་བ, स्ववचनविरुद्धः।

§ 15. འཇིག་རྟེན་དང་འགལ་བ, लोकविरुद्धः।

§ 16. རྟོགས་པ་དང་འགལ་བ, प्रतीतिविरुद्धः।

§ 17. ཁྱད་པར་མ་གྲུབ་པ, अप्रसिद्धविशेषणः।

§ 18. ཁྱད་པར་དུ་བྱ་བ་མ་གྲུབ་པ, अप्रसिद्धविशेष्यः।

§ 19. གཉི་ག་མ་གྲུབ་པ, अप्रसिद्धोभयः।

§ §-21-25. གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ, हेत्वाभासः।

མ་གྲུབ་པ, असिद्धः।

མ་ངེས་པ, अनकान्तिकः।

འགལ་བ, विरुद्धः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

§ 26. གཉིས་ཀ་ལ་མ་གྲུབ་པ, उभयासिद्धः ।

§ 27. ཕྱིར་རྒོལ་བ་ལ་མ་གྲུབ་པ, प्रतिवाद्यसिद्धः ।

§§ 28-29. རྒོལ་བ་ལ་མ་གྲུབ་པ, वाद्यसिद्धः ।

§§ 30-31. ཕྱོགས་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་མ་གྲུབ་པ, पक्षैकदेशासिद्धः ।

§ 32. ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའི་མ་གྲུབ་པ, संदिग्धासिद्धः ।

§ 33. ཆོས་ཅན་ཐེ་ཚོམ་ཟོས་མ་གྲུབ་པ, संदिग्धधर्म्यसिद्धः ।

§ 34. ཆོས་ཅན་མ་གྲུབ་པ་ ཡང་ མ་གྲུབ་པ, धर्म्यसिद्धावप्यसिद्धः ।

§ 36. མ་ངེས་པ་གཏན་ཚིགས་པ་ལྟར་སྣང་བ, अनैकान्तिकहेत्वाभासः ।

§ 37. ཐུན་མོང, साधारणः ।

§ 38. ཐུན་མོང་མ་ཡིན, असाधारणः ।

§ 39. མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་འཇུག་ལ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པར་འཇུག་པ, सपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापी ।

§ 40. མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་འཇུག་ལ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ཁྱབ་པ, विपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापी ।

§ 41. ཕྱོགས་གཉིས་གའི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་འཇུག་པ, उभयपक्षैकदेशवृत्तिः ।

§ 42. མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ལྡོག་པ་ལ་ནི་ཐེ་ཚོམ་ཟ་ལ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པ, संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिः सपक्षव्यापी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

§ 43. མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་འཇུག་པ་ནི་ཐེ་ཚོམ་ཟ་ལ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པ, संदिग्धसपक्षवृत्तिर्विपक्षव्यापी ।

§ 44. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་དང་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धान्वयव्यतिरेकी

§ 45. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་འབའ་ཞིག་པ, केवलान्वयी ।

§ 46. ལྡོག་པ་འབའ་ཞིག་པ, केवलव्यतिरेकी ।

§ 48. འགལ་བའི་གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ, विरुद्धो हेत्वाभासः ।

§ 49-50. ཆོས་ཀྱི་རང་གི་ངོ་བོ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ, धर्मस्वरूप-विपरीतसाधनः ।

§§ 5-52. ཆོས་ཅན་རང་གི་ངོ་བོ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ, धर्मिस्वरूप-विपरीतसाधनः ।

§ 53. ཆོས་ཅན་གྱི་ཁྱད་པར་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ, धर्मिविशेषविपरीत-साधनः ।

§ 55. འགལ་བ་མི་འཁྲུལ་བ, विरुद्धाव्यभिचारी ।

§ 57. ཆོས་མཐུན་པ་དཔེ་ལྟར་སྣང་བ, साधर्म्येण दृष्टान्ताभासः ।

§ 58. བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ མི་ཚང་བ, साध्यविकलः ।

§ 59. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་མ་ཚང་བ, साधनविकलः ।

§ 60. སྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་གཉིས་ག་མ་ཚང་བ, साध्य-साधनोभयविकलः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

§ 61. བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཆོས་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धसाध्यधर्मः ।

§ 62. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धसाधनधर्मः ।

§ 63. ཆོས་གཉི་ག་ལ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धोभयधर्मः ।

§ 65. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མེད་པ, अनन्वयः ।

§ 66. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མ་བསྟན་པ, अप्रदर्शितान्वयः ।

§ 67. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ཕྱིན་ཅི་ལོག, विपरीतान्वयः ।

§ 69. ཆོས་མི་མཐུན་པའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ, वैधर्म्येण दृष्टान्ताभासः ।

§ 70. སྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལྡོག་པ་མེད་པ, साध्याव्यावृत्तः ।

§ 71. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པ་མེད་པ, साधनाव्यावृत्तः ।

§ 72. གཉི་ག་ ལྡོག་པར་མེད་པ, उभयाव्यावृत्तः ।

§ 74. བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धसाध्यव्यति-
रेकः ।

§ 75. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धसाधनव्यतिरेकः ।

§ 76. གཉི་ག་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ, संदिग्धोभयव्यतिरेकः ।

§ 78. ལྡོག་པ་མེད་པ, अव्यतिरेकः ।

§ 79. ལྡོག་པ་མ་བསྟན་པ, अप्रदर्शितव्यतिरेकः ।

§ 80. ལྡོག་པ་ཕྱིན་ཅི་ལོག, विपरीतव्यतिरेकः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

§ 82. སུན་འབྱིན་པ, दूषणम्।

§ 83. སུན་འབྱིན་ལྟར་སྣང་བ, दूषणाभासः।

§ 84. ཡན་ལག་ལྔ་པོའི་འཇོམས་པ, पञ्चावयवखण्डनम्।

§§ 85-88. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ, अन्वयः।

ལྡོག་པ, व्यतिरेकः।

§§ 90-96. མངོན་སུམ, प्रत्यक्षम्।

§ 93. མངོན་ སུམ་ལྟར་སྣང་བ, प्रत्यक्षाभासः।

§§97-102. རྗེས་སུ་ དཔག་པ, अनुमानम्।

§§ 103-111. རྗེས་སུ་དཔག་པ་ལྟར་སྣང་བ, अनुमानाभासः।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

PART I

RECONSTRUCTED

SANSKRIT TEXT

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेतुतत्त्वोपदेशः

मञ्जुश्रीकुमारभूताय नमः

१. साधनं दूषणं चैव साभासं परसंविदे ।
प्रत्यक्षमनुमानं च साभासं त्वात्मसंविदे ॥

अयं शास्त्रार्थसंग्रहः ॥

२. वादिना स्वयं साधयितुमिष्टोऽर्थः साध्यः । येन साध्यते तत्साधनम् ॥

३. हेतोस्त्रैरूप्यमुच्यते । किं पुनस्तत्त्रैरूप्यम् । पक्षे सत्त्वमेव प्रथमं रूपम् । सपक्ष एव सत्त्वमिति द्वितीयं रूपम् । विपक्षे [च] असत्त्वमेव निश्चितमिति तृतीयं रूपम् ॥

४. तत्र पक्षः प्रसिद्धो धर्मी प्रसिद्धविशेषणेन विशिष्टः स्वयं साधयितुमिष्टः प्रत्यक्षाद्यविरुद्धः । यथा धर्मी शब्दोऽ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्य इति विशेषणेन विशिष्टः साध्यः। कृतकत्वादिति हेतुर्भवतीति ॥

५. कः पुनः सपक्षः। साध्यधर्मसामान्येन समानः सपक्षः। यथा घटादिरिति ॥

६. को हेतोर्विपक्षः। यत्र साध्याभावाद्धेत्वभावो निश्चयेन प्रदर्श्यते। यथाकाशादिः ॥

७. त्रिरूपहेतुप्रदर्शनेन परावगमनिमित्तं कृतः प्रयोगः परार्थानुमानभित्युच्यते। यथा शब्दोऽनित्य इति पक्षवचनम्। कृतकत्वादिति हेतुवचनम्। घटादिवदिति सपक्षवचनम्। आकाशादिवदिति विपक्षवचनम् ॥

८. स पुनर्द्विविधो दृश्यते। साधर्म्येण वैधर्म्येण च ॥

९. तत्र साधर्म्येण तावत्। यत्कृतकं तत्सर्वमनित्यं दृष्टम्। यथा घटादिः। शब्दोऽपि कृतक इति ॥

१०. वैधर्म्येणाप्यनित्यत्वाभावे कृतकत्वाभावः। यथाकाशादिः। शब्दस्तु कृतक इति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११. कः पुनः पक्षाभासः। पक्षाभासो वस्तुतो न पक्षः। प्रत्यक्षादिविरोधादयं पक्षाभासः॥

१२. यथा धूमादिर्धर्मी बुद्धिमद्धेतूत्पन्नः साध्य इति प्रत्यक्षविरुद्धः पक्षाभासः। प्रत्यक्षतो वह्नेर्धूमोत्पत्तिदर्शनात्॥

१३. अनुमानविरुद्धो यथा। वेदवचनं धर्म्यपौरुषेयमिति साध्ये शब्दः प्रयत्नानन्तरीयक इति पौरुषेयत्वस्य सिद्धेः॥

१४. स्ववचनविरुद्धो यथा। अनुमानं न प्रमाणमिति। परावगमाय वाक्यप्रयोगः परार्थानुमानमिति निर्देशात्॥

१५. लोकविरुद्धो यथा। शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यङ्गत्वाच् छङ्खशुक्तिवदिति॥

१६. प्रतीतिविरुद्धो यथा। यद् यावत्कालस्थायि [तत्] अनित्यम्। यद्यावत्कालस्थायि [तत्] सर्वं नित्यमिति लौकिकप्रतीतेः॥

१७. अप्रसिद्धविशेषणो यथा। वैशेषिकस्य सांख्यं प्रति शब्दो विनाशीति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८. अप्रसिद्धविशेष्यो यथा । सांख्यस्य बौद्धं प्रत्यात्मा चेतन इति साध्यम् ॥

१९. अप्रसिद्धोभयो यथा । वैशेषिकस्य बौद्धं प्रति समवायिकारणमात्मेति कायः स्थिरस्वभाव इति वा ॥

२०. पक्षाभासा उक्ताः ॥

२१. कीदृशो हेत्वाभासः। यो हेतुरिवाभासते न तु हेतुत्वेन सिध्यति ॥

२२. हेत्वाभासस्त्रिविधः। असिद्धो विरुद्धोऽनैकान्तिकश्च ॥

२३. तत्र पक्षासिद्धेरसिद्ध इति हेत्वाभासः ॥

२४. पक्षे सपक्षे चासन् विपक्षे च सन् [यः] स विरुद्ध इति हेत्वाभासः साध्यविपरीतसिद्धेः ॥

२५. सपक्षविपक्षयोरुभयोर्भावेऽभावे वा संशये वासिद्धप्रतिबन्धो यो हेतुः सोऽनैकान्तिको हेत्वाभासः। वादिप्रतिवादिभ्यां साधयितुमिष्टस्यैकान्तेनासिद्धेः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६. उभयासिद्धो यथा। शब्दस्यानित्यत्वे साध्ये हेतुश्चाक्षुषत्वं वादिप्रतिवादिनोरसिद्ध इति॥

२७. चेतनस्तरुरिति साध्ये सर्वत्वगपहरणे मरणादिति हेतुः प्रतिवादिनं बौद्धं प्रत्यसिद्ध इति प्रतिवाद्यसिद्धश्चित्तादिनिरोधस्य बौद्धस्येष्टत्वात्॥

२८. अचेतनाः सुखादय इति साध्ये उत्पत्तिमत्त्वादिति हेतुः सांख्यस्य स्वयं वादिनोऽसिद्ध इति वाद्यसिद्धः॥

२९. वैशेषिकेण प्रतिवादिनं बौद्धं प्रति पृथिव्यादिर्धर्मी कार्य इति साध्य एकैकक्षणवदन्यान्योत्पादादिति वादिनः स्वयमसिद्धः। सिद्धेऽप्युत्पाद एकैकक्षणवदन्यान्योत्पादासिद्धेः॥

३०. पक्षैकदेशासिद्धो यथा। चेतनास्तरवः स्वापादिति हेतुश्चन्दने वादिनः स्वयं पक्षैकदेशेऽसिद्धः। न हि सर्वे वृक्षा रात्रौ पत्रसंकोचभाजः॥

३१. एवमेव क्षित्यादिर्धर्मी बुद्धिमज्जात इति साध्ये कार्यमिति हेतुर्बौद्धं प्रत्यसिद्धः प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यां कार्यकारणसम्बन्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धस्वरूपेण क्षित्यादीनां सिद्धेः। वासभोजनादिसिद्धिरिति चेत्तदा पक्षैकदेशासिद्धिः ॥

३२. संदिग्धासिद्धो यथा। यदीह धूमः स्यादत्र वह्निः स्यादिति साध्ये हेत्वनिश्चयात् ॥

३३. संदिग्धधर्म्यसिद्धो यथा। एष्वनेकेषु निकुञ्जेषु कस्मिंश्चिन् निकुञ्जे मयूर इति साध्ये केकायितादिति हेतुरिति ॥

३४. धर्म्यसिद्धावप्यसिद्धो यथा। धर्म्यात्मा सर्वव्यापीति साध्ये सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादिति हेतुरिति ॥

३५. नवैतेऽसिद्धा हेत्वाभासाः ॥

३६. कीदृशः पुनरनैकान्तिको हेत्वाभासः। उच्यते।

३७. यथा शब्दस्य नित्यत्वादिके धर्मे साध्ये प्रमेयत्वादिति हेतुः सपक्षविपक्षयोः सर्वत्र वर्त्तमानः साधारणोऽनैकान्तिक इति ॥

३८. एवं शब्दो नित्य इति साध्ये श्रावणत्वादिति हेतुः सपक्षे विपक्षे चावृत्तेरसाधारणोऽनैकान्तिकः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३९. एवं शब्दस्याप्रयत्नानन्तरीयकत्वे साध्येऽनित्यत्वादिति हेतुः सपक्षैकदेशवृत्ति र्विपक्षव्याप्यनैकान्तिकः। अप्रयत्नानन्तरीयकस्य शब्दस्य सपक्षः विद्युदाकाशादिः। तत्र सपक्षैकदेशो विद्युदादावनित्यत्वं वर्त्तते। नाकाशादौ। विपक्षाः प्रयत्नानन्तरीयकादयः सर्वे। तेषु सर्वेष्वस्ति॥

४०. एवं शब्दस्य प्रयत्नानन्तीयकत्वे साध्येऽनित्यत्वादिति हेतु र्घटादौ सर्वत्र [विद्यते]। अप्रयत्नानन्तरीयको विपक्षः पुन र्विद्युदाकाशादिः। तत्रैकदेशो विद्युदादौ वर्त्तते नाकाशादौ। तस्मादयं विपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्याप्यनैकान्तिको हेतुः॥

४१. उभयपक्षैकदेशवृत्तिरनैकान्तिको यथा। धर्मी शब्दो नित्य इति साध्येऽमूर्त्तत्वादिति हेतुः। परमाण्वाकाशादिः सपक्षः। तत्र सपक्षैकदेश आकाशेऽमूर्त्तत्वं विद्यते न परमाणौ परमाणूनां मूर्त्तत्वात्। घटसुखादिरनित्यो विपक्षः। तदेकदेशे सुखादौ विद्यते न घटादाविति॥

४२. एवं संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिः सपक्षव्याप्यनैकान्तिको हेतुर्यथा। कपिलादि र्धर्म्यसर्वज्ञ इति साध्ये वक्तृत्वादिति

2

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेतू रथ्यापुरुषादौ सपक्षे विद्यते विपक्षे सर्वज्ञे संदिग्धः। सर्वज्ञस्यातीन्द्रियत्वाद्वक्तृत्वमस्ति न वेति संदेहः॥

४३. एवं संदिग्धसपक्षवृत्तिर्विपक्षव्याप्यनैकान्तिको हेतुर्यथा। ऋषभवर्धमानादि धर्मी सर्वज्ञ इति साध्ये केवलशास्त्रकर्त्तृत्वादिति हेतुः सपक्षे सर्वज्ञे संदिग्धः। सर्वज्ञस्यातीन्द्रियत्वात् केवलशास्त्रकर्त्तरि संदेहः। विपक्षे......आदावसर्वज्ञेऽस्तीति॥

४४. अन्वयव्यतिरेकयोः संदेहेऽनैकान्तिको हेतुर्यथा। जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्वादिति हेतुः। जीवच्छरीरसम्बन्धी प्राणादिः सात्मके निरात्मके वा वर्त्तमानो व्यावृत्तो वेत्यनिश्चयः॥

४५. ततः केवलान्वयी हेतुर्दृष्टान्ताभावात्॥

४६. एवं द्वितीयोऽपि केवलव्यतिरेकी। जीवच्छरीरमिदं न निरात्मकं प्राणाद्यभावप्रसङ्गादिति। दृष्टान्ताभावादन्वयस्यानिश्चयो व्यतिरेकस्य च निश्चय इत्ययं संदिग्धो हेतुः॥

४७. एते दशानैकान्तिकहेत्वाभासा उदाहृताः॥

४८. विरुद्धा हेत्वाभासाः कीदृशाः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४९. यथा धर्मी शब्दो नित्य इति साध्यधर्मः। कृतकत्वादाकाशादिवदित्ययं हेतुर्घटादौ विपक्ष एव विद्यते न सपक्षे॥

५०. एवं धर्मी शब्दो नित्य इति साध्ये प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति हेतुः सपक्ष आकाशादौ नास्ति घटादावेकदेशेऽस्ति विद्युदादौ नास्तीति। इमौ द्वौ हेतू धर्मस्वरूपविपरीतसाधनौ॥

५१. धर्मिस्वरूपविपरीतसाधनो द्विविधो यथा। एते चक्षुरादयः परार्था इति साध्यधर्मः संघातत्वादिति हेतुः शयनासनादिवदिति सपक्षनिर्देशः। अयं हेतुर्यथा चक्षुरादेः पारार्थ्यं साधयति तथा संहतत्वमपि परस्य साधयति। शयनासनादेः संहतदेवदत्तादिपरार्थत्वदर्शनात्॥

५२. धर्मिस्वरूपविपरीतसाधनो यथा। धर्म्यादिर्बुद्धिमतः कारणादुत्पद्यत इति साध्ये साश्रयत्वादिति हेतुः। घटादिवदिति सपक्षनिर्देशः। यथानेन हेतुना बुद्धिमद्धेतुतो जातत्वं साध्यते तथा बुद्धिमत्कर्त्तुः साश्रयत्वमपि साध्यते॥

५३. धर्मिविशेषविपरीतसाधनो यथा। वैशेषिकेण योगा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारं प्रति धर्म्यात्मा चेतन इति साध्ये विज्ञानाधिष्ठानादिति हेतुर्यथाचेतनमात्मानं चेतनं साधयति तथायं हेतुरनित्यमपि साधयति विज्ञानस्यानित्यत्वात् ॥

५४. पञ्चभिरेतैर्विरुद्धा हेत्वाभासाः प्रदर्शिताः ॥

५५. विरुद्धाव्यभिचारी कुत्रापि हेतुदोषो न भवतीति तस्योदाहरणोपन्यासो न युक्तः। उदाहरणमुच्यते चेत्। यत्सर्वदेशावस्थितैः स्वसम्बन्धिभिर्युगपदभिसम्बध्यते तत्सर्वगतम्। यथाकाशम्। सर्वदेशावस्थितैः स्वसम्बन्धिभिर्युगपत् सामान्यमभिसम्बद्धमिति पैलुकस्य स्वभावहेतुप्रयोगः। द्वितीयोऽपि प्रयोगः पैठरस्य। यदुपलब्धिलक्षणप्राप्तं सद्यत्र नोपलभ्यते न तत् [तत्र] अस्ति। तद्यथा कस्मिंश्चिद्देशेऽविद्यमानो घटः। नोपलभ्यते [च] उपलब्धिलक्षणप्राप्तं सामान्यं व्यक्त्यन्तरालेष्विति। अयमनुपलम्भहेतुः पूर्वोक्तश्च स्वभावहेतुः। अनयोः परस्परविरोधेन संशयजनकत्वात्। सपक्षादन्यो दृष्टान्तो न कश्चिदस्तीति सपक्ष एवायं साधर्म्येण दृष्टान्तो भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५६. तत्र कीदृशा दृष्टान्ताभासाः ॥

५७. साधर्म्येण तावत् ॥

५८. नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्कर्मवदिति साध्यविकलः कर्मणोऽनित्यत्वात् ॥

५९. नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्परमाणुवदिति साधनविकलः परमाणोर्मूर्त्तत्वात् ॥

६०. नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वाद्घटवदिति साध्य[साधन]-विकलः ॥

६१. एवं संदिग्धसाध्यधर्मो दृष्टान्ताभासो यथा। धर्मी पुरुषः कश्चिद्रागादिमान् वचनाद्रथ्यापुरुषवदिति। रथ्यापुरुष-दृष्टान्ते रागादिमत्त्वं संदिग्धम्। परचित्तानुमानस्य दुष्करत्वात् ॥

६२. संदिग्धसाधनधर्मो यथा। मरणधर्मा पुरुष इति साध्ये रागादिमत्त्वादिति हेतू रथ्यापुरुषदृष्टान्ते संदिग्धः। वीतराग-स्यापि सरागवच्चलत्वात् ॥

६३. संदिग्धोभयधर्मो दृष्टान्ताभासो यथा। धर्मी कश्चित्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषः [अ-]सर्वज्ञ इति साध्ये रागादिमत्त्वादिति हेतुः। रथ्यापुरुषदृष्टान्ते साध्यं साधनं च संदिग्धम् ॥

६४. अनन्वयोऽप्रदर्शितान्वयो विपरीतान्वयश्च दृष्टान्ताभासाः ॥

६५. तत्रानन्वयो यथा। यो वक्ता स रागादिमान् रथ्यापुरुषवत्। वक्तृत्वरागादिमत्त्वयोः कार्यकारणभावप्रतिषेधात् ॥

६६. अप्रदर्शितान्वयो यथा। अनित्यः शब्दः कृतकत्वादिति। अत्रान्वयव्याप्तिरप्रदर्शिता। वक्तृदोषादयं दृष्टान्ताभासः ॥

६७. विपरीतान्वयो यथा। यदनित्यं तत्कृतकमिति। घटादिवदिति। अत्रानित्यत्वं साध्यम्। साध्येन साधनस्य व्याप्तिर्दर्शनीया साधनेन तु साध्यस्य व्याप्तिर्दर्शिता। ततो विपरीतान्वयो दृष्टान्ताभासः ॥

६८. साधर्म्येणैते नव दृष्टान्ताभासा उक्ताः ॥

६९. वैधर्म्येण दृष्टान्ताभासा उच्यन्ते ॥

७०. साध्याव्यावृत्तो दृष्टान्ताभासो यथा। नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्परमाणुवदिति। इह परमाणुर्वैधर्म्यदृष्टान्त इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधनधर्मोऽमूर्त्तत्वं व्यावृत्तं मूर्त्तत्वात्परमाणूनाम्। साध्य-धर्मो नित्यत्वं न व्यावृत्तं नित्यत्वात्परमाणुनामिति ॥

७१. साधनाव्यावृत्तो यथा। नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात् कर्मवदिति। इह साध्यधर्मो नित्यत्वं व्यावृत्तं कर्मणोऽनित्यत्वात् साधनधर्मो न व्यावृत्तोऽमूर्त्तत्वात्कर्मणः ॥

७२. उभयाव्यावृत्तो यथा। नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वादा-काशादिवदिति। अत्राकाशादेर्वैधर्म्यदृष्टान्तात् साध्यं साधनं च न व्यावृत्तम् ॥

७३. तथा संदिग्धसाध्यव्यतिरेकः संदिग्धसाधनव्यतिरेकः संदिग्धोभयव्यतिरेकश्च ॥

७४. संदिग्धसाध्यव्यतिरेको दृष्टान्ताभासो यथा। असर्वज्ञाः कपिलादयोऽविद्यमानसर्वज्ञतालिङ्गभूतकेवलशास्त्रकर्तृत्वादिति। अत्र वैधर्म्येणोदाहरणमुच्यते। यः सर्वज्ञः स ज्योति-र्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान्। तद्यथा ऋषभवर्द्धमानादिरिति। इह वैधर्म्योदाहरण उक्त ऋषभवर्धमानादेरसर्वज्ञत्वं व्यावृत्तमव्या-वृत्तं वेति संदेहः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७५. संदिग्धसाधनव्यतिरेको यथा। इह त्रयीविदा ब्राह्मणेन कपिलकणादादिः पुरुषो न ग्राह्यवचनो रागादिमत्त्वादिति। अत्र वैधर्म्योदाहरणमुच्यते यो ग्राह्यवचनो न स रागादिमान् यथा गोतमादयः धर्मशास्त्राणां प्रणेतार इति। गोतमादिभ्यो रागादिमत्वस्य [साधन]धर्मस्य व्यावृत्तिः संदिग्धा ॥

७६. संदिग्धोभयव्यतिरेको यथा। अवीतरागाः कपिलादयः परिग्रहाग्रहयोगादिति। अत्र वैधर्म्येणोदाहरणमुच्यते। यो वीतरागः स न परिग्रहाग्रहवान् यथा ऋषभवर्द्धमानादिरिति। ऋषभादेः [वै]धर्म्यदृष्टान्ताद् वीतरागत्वपरिग्रहाग्रहयोः साध्यसाधनधर्मयोर्व्यतिरेकोऽव्यतिरेको वेति संदेहः। प्रागलब्धस्य वस्तुनो लाभः परिग्रहः लब्धस्यापरिवर्जनमाग्रहः। उभयोरपि तयो र्ऋषभे सम्भवः। छत्रचामरमहादुन्दुभीनां परिग्रहाग्रहश्रवणात्।

७७. अव्यतिरेको वैधर्म्यदृष्टान्ताभासोऽप्रदर्शितव्यतिरेको विपरीतव्यतिरेकश्चेति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७८. अव्यतिरेको यथा। कपिलादिरवीतरागो वक्तृत्वात्। यत्रावीतरागत्वं नास्ति न स वक्ता यथोपलखण्ड इति। यद्यपी-दमुपलखण्डाद्व्यावृत्तं तथापि सर्वस्माद्वीतरागाद्वक्तृत्वं न व्यावृत्तं सन्देहात्॥

७९. अप्रदर्शितव्यतिरेको यथा। अनित्यः शब्दः कृत-कत्वादाकाशादिवदिति। परमार्थतः सम्यगुदाहृतोऽपि वक्तु-रपराधाद्दृष्टान्ताभासः। परार्थानुमाने वक्तुर्गुणदोषयोर्द्वयो र्विचारणीयत्वात्। एवं यन्नित्यं तत्सर्वं नियतमकृतकं दृश्यते यथाकाशादिरिति वाग्विभागो वक्त्रा कर्त्तव्यः। पूर्ववर्त्तिनो व्यतिरेकस्याप्रदर्शनादप्रदर्शितव्यतिरेकः॥

८०. विपरीतव्यतिरेको यथा। यदकृतकं तन्नित्यं दृष्ट-मिति। इह तु साध्यविपरीते व्याप्तिर्दर्शनीया। तेन यद्यत्साध्य-विपरीतं तत्तन्नियतं साधनविपरीतं भवेत्॥

८१. अष्टादश दृष्टान्ताभासा उक्ताः॥

८२. एभिरेव पक्षहेतुदृष्टान्ताभासैर्वादिना साधनस्या-व्युत्पत्तेः [प्रति]वादी दूषणमुपन्यस्यति। तस्य दूषणस्य पूर्वपक्ष-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वादिनोऽभीष्टार्थसिद्धौ प्रतिबन्धकत्वात्साधनन्यूनतोद्भावनमेव दूषणमुच्यते। तस्मात्साधनवद्दूषणलक्षणाविभगाः पृथग् नोक्तः॥

८३. दूषणाभासो दूषणमेवेति स प्रतिवादिनोच्यते। यदा पूर्वपक्षवादिनोऽभूतं दोषमुद्भावयति [तदा] स दूषणाभासो जातिरिति। अभूतदोषोद्भावनं विपरीतोत्तरं जातिरित्युच्यते। यथा पक्षदोषाभावे पक्षदोषोद्भावनं हेतुदोषाभावे हेतुदोषोद्भावनं दृष्टान्तदोषाभावे च दृष्टान्तदोषोद्भावनं दूषणाभास इति॥

८४. तत्राहुरन्ये। प्रतिज्ञा हेतुः [उदाहरणम्] उपनयः निगमनं चेति पञ्चावयवं साधनमिति। यथानित्यः शब्दः इति प्रतिज्ञा। कृतकत्वादिति हेतुः। यत्कृतकं सर्वं तदनित्यं दृष्टं यथा घटादिरित्युदाहरणम्। तथा शब्दोऽपि कृतक इति उपनयः। तस्मादनित्य इति निगमनम्। दृष्टान्तप्रतीतसामर्थ्यस्य हेतोर्धर्मिण्युपसंहार उपनय इति। प्रतिज्ञायाः पुनः श्रवणं निगमनमित्युच्यते। मैवमन्वयो व्यतिरेकः पक्षधर्मश्चेति त्रयेणैव साध्यार्थसिद्धेः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८५. एवं वादकाले व्याप्तिपूर्वक एव प्रयोगः। यत्कृतकं सर्वं तदनित्यं दृष्टं यथा घटादिरिति दृष्टान्ते साध्यसाधनयोर्व्याप्तिप्रतिपादनमन्वय इत्युच्यते ॥

८६. विपक्षे पुनः साध्यव्यावृत्त्या साधनव्यावृत्तिर्व्यतिरेक इत्युच्यते। यथाऽनित्यत्वाभावे कृतकत्वाभावः स्याद्यथाकाशादिः ॥

८७. शब्दोऽपि कृतक इति पक्षधर्म उच्यते। प्रतिज्ञा निगमनं च सर्वथा न वक्तव्ये ॥

८८. तथा साधर्म्यप्रयोगेऽन्वयवचनसामर्थ्याद्व्यतिरेकावगमादयं पृथग् नोच्यते। यथा यत्कृतकं सर्वं तदनित्यं दृष्टं यथा घटादिः शब्दोऽपि कृतक इति साधर्म्यप्रयोगः। वैधर्म्यप्रयोगे व्यतिरेकवचनसामर्थ्यादन्वयप्रतीतिः। अत्र पुनरन्वयो न वाच्यः। यन्नित्यं तदकृतकं दृष्टं यथाकाशादिः शब्दस्तु कृतक इति वैधर्म्यप्रयोगः ॥

८९. साधनाभासो दूषणाभासश्चोक्तः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९०. किं नाम प्रत्यक्षमिति। प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्। अक्षं प्रतिगतमाश्रितं यद्विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्। पञ्चेन्द्रियाश्रितं ज्ञानमित्यर्थः। अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीययेति समासेनाभिधेयलिङ्गः प्रत्यक्षशब्दः सिद्धः। प्रत्यक्षोऽवबोधः प्रत्यक्षा बुद्धिः प्रत्यक्षं ज्ञानं चेति युक्तं भवति॥

९१. चक्षुः श्रोत्रं नासिका जिह्वा कायश्चेति पञ्चेन्द्रियाणि। तदाश्रितस्य ज्ञानस्य पञ्च ग्राह्यविषया रूपं शब्दो गन्धो रसः स्प्रष्टव्यञ्चेति पञ्चैव प्रमेयाणि॥

९२. तच्च प्रत्यक्षं नामजात्यादिकल्पनापोढं निर्विकल्पं वा यदि पुनरभ्रान्तं प्रमाणमुच्यते प्रदर्शितार्थेऽविसंवादात्।

९३. तत्र नामविकल्पः देवदत्तोऽयमिति ज्ञानम्। जातिविकल्पोऽयं गौरिति ज्ञानम्। विशेष्यविशेषणविकल्पो नीलमुत्पलमिति। अन्योऽपि सविकल्पः प्रत्यक्षाभासः। विद्यमानेऽर्थे विभ्रमस्तैमिरिकस्य द्विचन्द्रज्ञानम्। शुक्तौ रजतज्ञानम्। अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ज्ञानं च। ज्ञानान्तरमपि प्रत्यक्षाभासः प्रदर्शितार्थाप्रापकत्वात्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९४. तत्र प्रत्यक्षं त्रिविधम्। व्यावहारिकमिन्द्रियज्ञानं सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं स्वसंवेदनं भूतार्थभावनास्फुटप्रकर्षपर्यन्तजं योगिज्ञानं चेति ॥

९५. तस्य विषयः स्वलक्षणम्। अर्थक्रियासमर्थं स्वलक्षणम्। न सामान्यमर्थक्रियासमर्थम्।

९६. तदेव च प्रत्यक्षं प्रमाणमर्थप्रतीतिरूपत्वात् फलमपि। तथात्वेन च प्रमाणफलयोर्न मनागपि भेदः ॥

९७. द्विविधमनुमानं स्वार्थं परार्थं च ॥

९८. तत्र स्वार्थं तावत् पक्षधर्मग्रहणात् साध्यसाधनसम्बन्धस्मृतेः पश्चात् प्रतिपत्तुरर्थस्य यथावद्या प्रतीतिस्तदेव स्वार्थानुमानम् ॥

९९. पक्षधर्मस्त्रिप्रकार एव कार्यं स्वभावोऽनुपलब्धिश्च ॥

१००. कार्यकारणसिद्धौ कार्यं हेतुरिति। यथा यत्र धूमः [तत्र] अग्निर्यथा महानसादौ। अत्रापि धूमसद्भावादिति। अग्न्यभावे धूमाभावो यथा सजले देश इति अत्र तु धूमादिति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१०१. स्वभावो हेतुः। वृक्षोऽयं शिंशपात्वात् पूर्वव्यवहारापन्नशिंशपावत्। वृक्षाभावे शिंशपाभावो यथा वृक्षरहिते प्रदेशे। इह पुनस्तेन व्यापकेन रूपेण व्याप्यो हेतुः॥

१०२. अनुपलब्धिहेतुः। अत्र घटो नास्तुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धेः शशविषाणादिवत्। अत्रापि यदोपलब्धियोग्यानुपलब्धावुपलब्धियोग्याभावव्याप्तिर्निश्चीयते तदायं हेतुस्तत्प्रतिपादको भवति॥

१०३. कीदृशा अनुमानाभासाः। पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च परकल्पितानि सर्वाणि अनुमानान्यनुमानाभासाः। तेषां तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणेन प्रतिबन्धाभावात्। हेतुफलसम्बन्धे व्याप्यव्यापकसम्बन्धे च सिद्धे साध्यसाधनसम्बन्धो भवति नान्यथा विसंवादकत्वात्॥

१०४ यथा मेघोऽयं वृष्टिमान् दृश्यते। गम्भीरनिर्घोषवत्त्वादित्यत्र गम्भीरघोषवतो मेघाद्वृष्ट्यनुद्भवसम्भवात्।

१०५ यथोपरिष्टाद्वृष्टं नदीवृद्धिदर्शनादिति। नदीनिरोधादपि नदीवृद्धिदर्शनात्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१०६. एवमिमे तण्डुलाः सिद्धा एकपात्रमध्यवर्तित्वाद् दृष्टतण्डुलवत् ॥

१०७. इमानि फलानि पक्वान्येकशाखातो जातत्वाद्भुक्तफलवदित्यत्र प्रायेणैवं दृष्टेऽपि साध्यसाधनयोर्विसंवाद एव ॥

१०८. यत्पार्थिवं तत्सर्वं लोहलेख्यं दृश्यते यथा वृक्षादय इति। अत्र वज्रोऽपि पार्थिवः ॥

१०९. ये प्राणिनस्ते सर्वे सकन्धरा यथोष्ट्रादय इति। अत्र कुलीरोऽपि प्राणी ॥

११०. यद्द्रवद्रव्यं तदार्द्रं दृश्यते यथा जलमिति। अत्र रसोऽपि द्रवद्रव्यम् ॥

१११. एवमन्येऽप्यनुमानाभासा दृश्यन्ते ॥

[इति] पण्डितप्रवराजितारिपादकृतो
हेतुतत्त्वोपदेशः सम्पूर्णः।

भारतीयोपाध्यायेन पण्डितेन कुमारकलसेन भाषान्तरकारकेण
भिक्षुणा शाक्यप्रभेण च भोटभाषायां विपरिणमय्य
संशोध्य च विन्यस्तः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

PART II

TIBETAN TEXT

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[344b6] ༄༅ ། ། རྒྱ་གར་ སྐད་དུ །

ཧེ་ཏུ་ཏ་ཏྭ་ཨུ་པ་དེ་ཤ །

བོད་སྐད་དུ །

གཏན་ཚིགས་ཀྱི་ དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ བསྟན་པ ། །

འཇམ་དཔལ་གཞོན་ནུར་གྱུར་པ་ལ་

ཕྱག་འཚལ་ལོ ། །

༡. བསྒྲུབ་ དང་ སུན་ནི་འབྱིན་པ་ དང་ །
ལྟར་སྣང་[7]བཅས་པས་ གཞན་རིག་བྱེད །
མངོན་སུམ་ དང་ ནི་ རྗེས་དཔག་ གཉིས །
ལྟར་སྣང་བཅས་པ་ བདག་རིག་བྱེད ། །

འདི་ནི་ བསྟན་བཅོས་ཀྱི་ དོན་བསྡུས་པའོ ། །

༢. རྒོལ་བ་ བདག་ཉིད་ཀྱིས་ བསྒྲུབ་པར་ འདོད་པའི་ དོན་ ནི་ བསྒྲུབ་པར་བྱའོ ། ། གང་གིས་[345a1]བསྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ དེ་ ནི་ བསྒྲུབ་པ་ ཡིན་ཏེ །

༣. གཏན་ཚིགས་ཀྱི་ ཚུལ་གསུམ་ བརྗོད་པའོ ། ། ཚུལ་གསུམ་པོ་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

དེ་དག་ ཀྱང་ གང་ ཞེ་ན། ཕྱོགས་ལ་ ཡོད་པ་ ཉིད་ ནི་ ཚུལ་ གཅིག་གོ། མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ ཉིད་ལ་ ཡོད་པ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་[2]ཚུལ་ གཉིས་པའོ།། མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ མེད་པ་ ཉིད་དུ་ ངེས་པ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ ཚུལ་ གསུམ་པའོ།།

༦. དེ་ལ་ ཕྱོགས་ ནི་ རབ་ཏུ་གྲུབ་པའི་ ཆོས་ཅན་ནོ། རབ་ཏུ་ གྲུབ་པའི་ ཁྱད་པར་གྱི་ བྱེ་བྲག་ བདག་ཉིད་ སྒྲུབ་པར་ འདོད་པ་ མངོན་སུམ་ལ་[3]སོགས་པ་ འགལ་བ་མེད་པ་ ཡིན་ནོ། དཔེར་ན་ ཆོས་ཅན་ སྒྲ་ མི་རྟག་པའི ཁྱད་པར་གྱི་ བྱེ་བྲག་དང་ལྡན་པ་ནི་ བསྒྲུབ་པར་བྱའོ།། བྱས་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་པ་ བཞིན་ནོ།།

༧. མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ གང་ ཞེ་ན། བསྒྲུབ་པར་[4]བྱ་བའི་ ཆོས་ཀྱི་ སྤྱིས་ མཐུན་པ་ ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཏེ། དཔེར་ན་ བུམ་པ་ལ་ སོགས་པ་ ལྟ་བུའོ།།

༨. གཏན་ཚིགས་ཀྱི་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ གང་ ཞེ་ན། གང་དུ་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་མེད་པས་ གཏན་ཚིགས་མེད་པར་ ངེས་པར་ སྟོན་པ་ཡིན་ ཏེ། [5]དཔེར་ན་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ།།

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༧. གཏན་ཚིགས་ཀྱིས་ ཚུལ་གསུམ་པ་ བསྟན་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ གཞན་ཁོང་དུ་ཆུད་པའི་ཆེད་དུ་ སྦྱོར་བ་ བྱས་པ་ ནི་ གཞན་གྱི་དོན་རྗེས་སུ་དཔག་པ་ ཞེས་ བསྟན་ཏོ། དཔེར་ན་ སྒྲ་ མི་རྟག་གོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་[6]ཕྱོགས་ བརྗོད་པའོ॥ བྱས་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གཏན་ཚིགས་ བརྗོད་པའོ། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ བརྗོད་པའོ། ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་ བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ བརྗོད་[7]པའོ॥

༨. དེ་ ཡང་ རྣམ་པ་གཉིས་སུ་ སྣང་སྟེ། ཆོས་མཐུན་པ་ དང་ ཆོས་མི་མཐུན་པའོ॥

༩. དེ་ལ་ རེ་ཞིག་ ཆོས་མཐུན་པ་ ནི་ གང་ བྱས་པ་ དེ་ ཐམས་ཅད་ ནི་ མི་རྟག་པར་ མཐོང་བ། དཔེར་ན་ བུམ་པ་ལ་སོགས་པའོ། སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པའི་ཕྱིར་[345b1] ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ॥

༡༠. ཡང་ ཆོས་མི་མཐུན་པ་ནི་ མི་རྟག་པ་ཉིད་མེད་ན་ བྱསཔ་ ཉིད་ མེད་དེ། དཔེར་ན་ ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ཏེ། སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པའི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ॥

༡༡. ཕྱོགས་ལྟར་སྣང་བ ཡང་ གང་ ཞེ་ན། ཕྱོགས་ལྟར་[2]སྣང་བ་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ནི་ དངོས་སུ་ ཕྱོགས་ མ་ཡིན་པ་ ཡིན་ཏེ། མངོན་སུམ་ལ་སོགས་པས་ གནོད་པའི་ཕྱིར་རོ་ དེ་ ནི་ ཕྱོགས་ལྟར་སྣང་བ་ སྟེ།།

༡༢. དཔེར་ན་ དུ་བ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་ཅན་ གློ་དང་ལྡན་པའི་རྒྱུས་ བསྐྱེད་པ་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ ཡིན་ནོ།། ཞེས་[3]བྱ་བ་ མངོན་སུམ་དང་འགལ་བས་ ཕྱོགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ། མངོན་སུམ་གྱིས་ མེ་ལས་ དུ་བ་སྐྱེ་བ་མཐོང་བའི་ཕྱིར་རོ།།

༡༣. རྗེས་སུ་དཔག་པ་དང་འགལ་བ་ནི་ དཔེར་ན། རིག་བྱེད་ཀྱི་ ཚིག་ནི་ ཆོས་ཅན། སྐྱེས་བུས་བྱས་པ་མ་ཡིན་ཏེ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་[4]པར་བྱ་བ་ལ། སྒྲ་ ནི་ བཙལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བ་ ཡིན་པས་ སྐྱེས་བུས་བྱས་པས་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༡༤. རང་གི་ཚིག་དང་འགལ་བ་ ནི་ དཔེར་ན་ རྗེས་སུ་དཔག་པ་ནི་ ཚད་མ་ མ་ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི། གཞན་གྱི་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་ ཚིག་བརྗོད་[5]པ་ ནི་ གཞན་གྱི་དོན་གྱི་རྗེས་སུ་དཔག་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༡༥. འཇིག་རྟེན་དང་འགལ་བ་ ནི་ དཔེར་ན་ མི་མགོ་འི་ ཐོད་པ་ ནི་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

གཙང་བ་ ཡིན་ཏེ་ སྲོག་ཆགས་ཀྱི་ཡན་ལག་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ དུང་ ཆོས་དང་ ཉ་ཕྱིས་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་[6]བུའོ ॥

༡༦. རྟོགས་པ་དང་འགལ་བ་ནི་ དཔེར་ན། གང་ དུས་ ཇི་སྲིད་ གནས་པར་བྱསཔ་ ནི་ [དེ་] མི་རྟག་པ་ ཡིན་ནོ ॥ གང་ དུས་ ཇི་སྲིད་ གནས་པར་ཡང་བྱས་པ་ [དེ་] ཐམས་ཅད་ནི་ རྟག་པ་ ཡིན་ནོ། ཞེས་ འཇིག་རྟེན་པས་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་རོ ॥

༡༧. ཁྱད་པར་མ་གྲུབ་པ་ནི་[7]དཔེར་ན། བྱེ་བྲག་པས་ གྲངས་ཅན་པ་ལས་ སྒྲ་ འཇིག་པ་ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ ॥

༡༨. ཁྱད་པར་དུ་བྱ་བ་མ་གྲུབ་པ་ནི་ དཔེར་ན། གྲངས་ ཅན་པས་ སངས་རྒྱས་པ་ལ་ བདག་ སེམས་དང་བཅས་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པ་ལྟ་ བུའོ ॥

༡༩. གཅིག་[346a1]མ་གྲུབ་པ་ནི་ དཔེར་ན་ བྱེ་བྲག་པས་ སངས་རྒྱས་པ་ལ་ བསྡུས་པར་བྱེད་པ་ནི་ བདག་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བ་ལྟ་བུ་འམ། ལུས་ ནི་ བརྟན་པའི་རང་བཞིན་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ ॥

༢༠. ཕྱོགས་ལྟར་སྣང་ བཤད་[2]ཟིན་ཏོ ॥

༢༡. གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཅི་འདྲ་བ་ཞིག་ ཅེ་ན། གང་ཞིག་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་གྱི་ གཏན་ཚིགས་སུ་ གྲུབ་པ་ནི་མ་ཡིན་པའོ ॥

༢༢. གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ནི་ གསུམ་སྟེ། མ་གྲུབ་པ་ དང་ འགལ་བ་ དང་ མ་[3]ངེས་ པའོ ॥

༢༣. དེ་ལ་ ཕྱོགས་ལ་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་ མ་གྲུབ་ ཅེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ནོ ॥

༢༤. ཕྱོགས་ དང་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ནི་ མེད་པ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ཡོད་པ་ དེ་ ནི་ འགལ་བ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་[4]ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལས་ཕྱིན་ཅི་ལོག་སྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ ॥

༢༥. མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ དང་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ གཅིག་ ལས་ ཡོད་པ་ འམ་ མེད་པ་ འམ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ལ་ འམ་ འབྲེལ་བ་མ་གྲུབ་པའི་ གཏན་ཚིགས་ གང་[5] ཡིན་པ་ དེ་ ནི་ མ་ངེས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣབ་ང་ ཞེས་བྱ་བ་ ཡིན་ཏེ། ཐོལ་བ་ དང་ ཕྱིར་གྲོལ་བས་བསྒྲུབ་པར་ འདོད་པ་ ངེས་པ་ མི་འགྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ ॥

༢༦. དཔེར་ན་ གཉིས་[ཀ་]ལ་མ་གྲུབ་པ་ ནི་ སྒྲ་ མི་རྟག་པ་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ཉིད་དུ་ གྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། [6]གཏན་ཚིགས་ མིག་གིས་བཟུང་བ་ ནི་ གྲོལ་བ་ དང་། ཕྱིར་གྲོལ་བ་དག་ལ་ མ་གྲུབ་པ་ ལྟ་བུའོ།།

༣༧. ཤིང་ སེམས་དང་ལྡན་པར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ ཤུན་ལྤགས་ ཐམས་ཅད་བཤུས་ན་ འཆི་བའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི། ཕྱིར་[7]གྲོལ་བ་ སངས་རྒྱས་པ་ལ་ མ་གྲུབ་པས་ ཕྱིར་གྲོལ་བ་ལ་ མ་གྲུབ་ ཞེས་བྱ་སྟེ། སེམས་ལ་སོགས་པ་འགགས་པ་ལ་ སངས་རྒྱས་པ་ འདོད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༣༨. བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་ སེམས་མེད་པར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ སྐྱེ་བ་དང་ལྡན་པའི་[346b1]ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི། གྲངས་ཅན་པ་ གྲོལ་བ་ བདག་ཉིད་ལ་ མ་གྲུབ་པས། གྲོལ་བ་ལ་མ་གྲུབ་པ་ ཞེས་བྱའོ།།

༣༩. བྲེ་བྲག་པས་ ཕྱིར་གྲོལ་བ་ སངས་རྒྱས་པ་[1]ལ་. ས་ལ་སོགས་ པའི་ ཆོས་ཅན་ བྱ་བ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། སྐད་[2]ཅིག་ རེ་རེ་འདུ་བ་ གཞན་དང་གཞན་འབྱུང་ངོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གྲོལ་བ་ [བ]དག

1 X པར.

5

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ལ་ཉིད་མ་གྲུབ་པ་ ཡིན་ཏེ[1] ། སྐྱེ་བ་ གྲུབ་ ཀྱང་ སྐད་ཅིག་རེ་རེ་འདུ་བ་ གཞན་ དང་ གཞན་ འབྱུང་ངོ་ ཞེས་པ་ནི་མ་གྲུབ་པའོ ॥

༣༠. ཕྱོགས་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་མ་གྲུབ་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ ཤིང་·[3] རྣམས་ ནི་ སེམས་དང་ལྡན་པ་ ཡིན་ཏེ ། གཉིད་ལོག་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ ཕྱོགས་ཀྱི་གོས་ཅན་ གྲོལ་བ་ [བ]དག་ ཉིད་ལ་ ཕྱོགས་ཀྱི་ གཅིག་ལ་ མ་གྲུབ་ སྟེ ། ཤིང་ ཐམས་ཅད་ མཚན་མོ་ ལོ་མ་འཁུམ་པ་ལ་བརྟེན་པ་ མ་ཡིན་ནོ ॥

༣༡. དེ་བཞིན་དུ་ ས་ལ་[4]སོགས་པའི་ ཆོས་ཅན་ བློ་དང་ལྡན་ལས་ སྐྱེས་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ འབྲས་བུ་ ཡིན་ནོ ། ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ སངས་རྒྱས་པ་ལ་ མ་གྲུབ་སྟེ ། མངོན་སུམ་ དང་མི་དམིགས་པ་ རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་འབྲེལ་བ་ བསྒྲུབ་པའི་ངོ་བོས་ ས་ལ་སོགས་པ་ འགྲུབ་[5]པའི་ཕྱིར་རོ ། གལ་ཏེ་ གནས་ དང་ བཟའ་ བ་ལ་སོགས་ གྲུབ་པ་ ཞེས་ ཟེར་ན ། དེའི་ཚེ་ ཕྱོགས་ ཀྱི་[2] ཕྱོགས་ གཅིག་མ་གྲུབ་བོ[3] ॥

---

1 NX པ. 2 NX ཀྱིས. 3 X པོ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༣༢. ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའི་མ་གྲུབ་པ་ནི། དཔེར་ན་ གལ་ཏེ་ འདི་ དུ་བ་ ཡིན་ན་ འདི་ན་ མེ་ ཡོད་དོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། གཏན་[6] ཚིགས་ ཉིད་མ་ངེས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༣༣. ཆོས་ཅན་ཐེ་ཚོམ་ཟོས་མ་གྲུབ་པ་ནི། དཔེར་ན་ རི་སུལ་ དུ་མ་ འདི་དག་ལས་ རི་སུལ་ འགའ་ཞིག་ན་ རྨ་བྱ་ ཡོད་དོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ རྨ་བྱའི་སྒྲ་གྲགས་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་པ་ ལྟ་[7]བུའོ།།

༣༤. ཆོས་ཅན་མ་གྲུབ་པ་ ཡང་ མ་གྲུབ་པ་ ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ ཆོས་ཅན་ བདག་ ཐམས་ཅད་དུ་ཁྱབ་པར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། ཡོན་ཏན་ ཐམས་ཅད་ནི་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ། ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་པ་ལྟ་བུའོ།།

༣༥. དགུ་[1]པོ་ འདི་[347a1]དག་ ནི་ མ་གྲུབ་པ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བའོ།།

༣༦. མ་ངེས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཡང་ ཅི་འདྲ་བ་ ཅིག་ཅེ་ན། སྨྲས་པ།།

---

1 X བཅུ་.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

༣༧. དཔེར་ན་ སྒྲ་ རྟག་པ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། གཞལ་བྱ་ཡིན་[2]པའི་ཕྱིར་ཞེས་བའི་ གཏན་ཚིགས་ནི། མཐུན་པའི་ཕྱོགས་དང་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ ཐམས་ཅད་ལ་ འཇུག་པའི་ཐུན་མོང་གི་ མ་ངེས་པ་ ཞེས་བྱའོ།།

༣༨. དེ་བཞིན་དུ་ སྒྲ་ རྟག་[1]པར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། མཉན་པར་བྱ་བ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ [3]གཏན་ཚིགས་ ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ དང་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ མི་འཇུག་པའི་ཕྱིར་ ཐུན་མོང་མ་ཡིན་ མ་ངེས་པ་ ཡིན་ནོ།།

༣༩. དེ་བཞིན་དུ་ སྒྲ་ བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བའི་མ་ཡིན་པ་ཉིད་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ མི་རྟག་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བའི་[2] [4]གཏན་ཚིགས་ནི། མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་འཇུག་ལ། མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་[3]པར་འཇུག་པའི་མ་ངེས་པ་ ཡིན་ཏེ། བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བ་མ་ཡིན་པའི་ སྒྲ་ མཐུན་པའི་ ཕྱོགས་ ནི་ གློག་དང་།

---

1 X རྟགས.

2 X adds ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བའི.

3 X ཁྱད.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ནམ་[5]མཁའ་ལ་སོགས་པ་ སྟེ། དེ་ལ་ མཐུན་པའི་ ཕྱོགས་ལ་ཕྱོགས་གཅིག་ གློག་ལ་སོགས་པ་ལ་ ནི་ མི་རྟག་པ་ འཇུག་ལ། ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་ལ་ ནི་ མ་ཡིན་ནོ॥ མི་མཐུན་པའི་ ཕྱོགས་ བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བ་ལ་སོགས་པ་ཐམས་ཅད་[6] ཡིན་ཏེ། དེ་ཐམས་ཅད་ལ་ འཇུག་པ་ཡིན་ ནོ॥

༨༠. དེ་བཞིན་དུ་ སྒྲ་ ནི་ བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བ་ཉིད་ ཡིན་ཏེ། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ མི་རྟག་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ཐམས་ཅད་ལ་ ཡང་ བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་ བྱུང་བ་ [7]མ་ཡིན་པ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ ཡང་ གློག་དང་ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་ དེ་ལ་ ཕྱོགས་གཅིག་ གློག་ལ་སོགས་པ་ལ་ ནི་ འཇུག་ལ། ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་ལ་ ནི་ མ་ཡིན་ལ། དེའི་ཕྱིར་ འདི་ མི་མཐུན་པའི་ ཕྱོགས་གཅིག་ལ འཇུག་ལ། མཐུན་[347b1]པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པའི་ མ་ངེས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ ཡིན་ནོ॥

༨༡. ཕྱོགས་གཉིས་ཀའི་ཕྱོགས་གཅིག་ལ་འཇུག་པའི མ་ངེས་པ་ ནི་ དཔེར་ན། ཆོས་ཅན་ སྒྲ་ རྟག་པར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། ལུས་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི། མཐུན་[2]པའི་ཕྱོགས་ རྫུལ་ཕྲ་རབ་དུ་ དང་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་ དེ་ལ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་གཅིག་ ནམ་མཁའ་ནི་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པ་ འཇུག་ལ། རྫུལ་ཕྲ་རབ་ནི་ མ་ཡིན་ ཏེ་ ཕྲ་རབ་རྣམས་ ལུས་ཅན་ ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། བུམ་པ་དང་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་ མི་[3]རྟག་པ་ མི་མཐུན་པའི་ ཕྱོགས་[སོ། དེ་ལ་ ཕྱོགས་]གཅིག་ བདེ་བ་ལ་ སོགས་པ་ འཇུག་པ། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ མ་ཡིན་པ་ ལྟ་བུའོ།།

༨༢. དེ་བཞིན་དུ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ལྡོག་པ་ལ་ནི་ཕྱི་ཆོས་ཟ་ལ། མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པའི་མ་ངེས་པའི་ གཏན་[4]ཚིགས་ནི། དཔེར་ན་ སེར་སྐྱ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་ཅན་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་མ་ཡིན་ཏེ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལས་ སྨྲ་བའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ནི། ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུ་ལ་སོགས་ དང་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ནི་ ཡོད་ལ་ མི་མཐུན་[5]པའི་ཕྱོགས་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ལ་ ནི་ ཕྱི་ཆོམ་ཟ་ སྟེ། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ ནི་ དབང་པོ་ལས་འདས་པའི་ཕྱིར་ སྨྲ་བ་ ཡོད་ དམ་ མེད་པ་ལ་ ཕྱི་ཆོམ་ཟ་བ་ ཡིན་ནོ།།

༨༣. དེ་བཞིན་དུ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་འཇུག་པ་ནི་ཕྱི་ཆོམ་ཟ་ལ་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

མི་མཐུན་པའི་[6]ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པའི་ མ་ངེས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ དཔེར་ན་ ཁྲུ་མཆོག་དང་འཕེལ་བ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་ཅན་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ བསྟན་བཅོས་འབའ་ཞིག་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ལ་ གཏན་ཚིགས་[7]ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ལ་ ནི་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་ སྟེ་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ ནི་ དབང་པོ་ལས་ཤིན་ཏུ་འདས་པའི་ཕྱིར། བསྟན་བཅོས་འབའ་ཞིག་བྱེད་པ་ལ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ ཡིན་ནོ། མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་པར་ ཧ་དང་མཧ་[348a1]རེ་ལ་སོགས་པ་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་མ་ཡིན་པ་ལ་ ཡོད་པ་ལྟ་བུའོ ॥

༨༨. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ དང་ ལྡོག་པ་ལ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའི་ མ་ངེས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ དཔེར་ན་ གསོན་པའི་[2]ལུས་ ནི་ བདག་དང་བཅས་པ་ ཡིན་ཏེ་ སྲོག་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ། ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ གསོན་པོའི་ལུས་དང་འབྲེལ་པ་ཅན་སྲོག་ལ་སོགས་པ་ བདག་དང་བཅས་པ་ ནས་ བདག་མེད་པ་ལ་ འཇུག་པ་ནས། ལྡོག་[3]པ་ མ་ངེས་པ་ ཡིན་ཏེ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༢༥. དེ་བས་ན་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་འབའ་ཞིག་པའི་ གཏན་ཚིགས་ཡིན་ཏེ་ དཔེ་མེད་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ ༎

༢༦. དེ་བཞིན་དུ་ གཉིས་པ་ལ་ ཡང་ ལྡོག་པ་འབའ་ཞིག་ཡིན་ཏེ ། གསོན་པོའི་ལུས་ འདི་ ནི་ བདག་མེད་པ་ མ་[4] ཡིན་ཏེ་ སྲོག་ལ་སོགས་པ་མེད་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ ། དཔེ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ ངེས་པ་མེད་པ་དང་ ། ལྡོག་པ་ ཡང་ ངེས་པ་ འདི་ ནི་ ཁྱེ་ཚོམ་ཟ་བའི་ གཏན་ཚིགས་སོ ༎

༢༧. བཅུ་པོ་ འདི་དག་ ནི་ མ་ངེས་[5] པའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཞེས་བསྟན་ཏོ ༎

༢༨. འགལ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ ཅི་འདྲ་བ་ཞིག་ཅེ་ན ༎

༢༩. དཔེར་ན་ ཆོས་ཅན་ སྒྲ་ རྟག་སྟེ་ ཞེས་བྱ་བ་ ནི་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ ཆོས་སོ ། བྱས་པའི་ཕྱིར་ ནམ་ཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ ། [6] ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ འདི་ནི ། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ ཉིད་ལ་ ཡོད་ལ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ནི་ མ་ཡིན་པ་ལྟ་བུའོ ༎

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༤༠. དེ་བཞིན་དུ་ ཆོས་ཅན་ སྒྲ་ དག་ སྟེ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ། བརྩལ་མ་ཐག་ཏུ་བྱུང་བ་ཡིན་[7]པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་[1] གཏན་ཚིགས་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་ལ་ མེད་ ཕྱོགས་གཅིག་ བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་ ཡོད་ལ། གློག་ལ་སོགས་པ་ལ་ ནི་ མེད་པ་ལྟ་བུའོ། གཏན་ཚིགས་ འདི་ གཉིས་ ནི་ ཆོས་ཀྱི་རང་གི་[348b1]ངོ་བོ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ་དང་ ༎

༤༡. ཆོས་ཅན་རང་གི་ངོ་བོ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ་ལ་ རྣམ་པ་གཉིས་ ཡིན་ཏེ། དཔེར་[2]ན་[3] མིག་ལ་སོགས་པ་ དེ་དག་གཞན་གྱིས་དོན་བྱེད་པ་ ཡིན་ཏེ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ བསྒྲུབ་བྱ་བའི་ཆོས་སོ། བསགས་པ་[2]ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གཏན་ཚིགས་སོ། ཁྲི་དང་སྟན་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ ༎ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་བསྟན་པའོ ༎ འདི་ལྟར་ གཏན་ཚིགས་ འདིས་ མིག་ལ་སོགས་པ་ གཞན་གྱི་དོན་དུ་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་ལ་ དེ་བཞིན་དུ་[3]བསགས་པ་ཉིད་ གཞན་གྱིར་[4] སྒྲུབ་པར་

---

1 X adds ཕྱིར.
2 X adds ཅམ.
3 X adds ཆོས.
4 X adds པེར.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

བྱེད་དེ། ཁྲི་དང་སྟན་ལ་སོགས་པ་ བསགས་པས་ ལྷས་བྱིན་ལ་སོགས་པ་ གཞན་གྱི་དོན་བྱེད་པར་ མཐོང་བའི་ཕྱིར་རོ༎

༤༢. ཆོས་ཅན་རང་གི་ངོ་བོ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ ཆོས་[4]ཅན་ལ་སོགས་པ་ ནི་ བློ་དང་ལྡན་པའི་ རྒྱུ་ལས་ སྐྱེས་པ་ཡིན་ཏེ། ཞེས་བྱ་བར་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ རྟེན་པ་དང་བཅས་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གཏན་ཚིགས་སོ༎ བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བས་ནི་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་བསྟན་ཏོ༎ [5]འདི་ལྟར་ གཏན་ཚིགས་ འདིས་ ནི་ བློ་དང་ལྡན་པའི་རྒྱུ་ལས་ སྐྱེས་པ་ཉིད་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ཡིན་ལ། དེ་བཞིན་དུ་ བློ་དང་ལྡན་པའི་བྱེད་པའི་ རྟེན་དང་བཅས་པ་ ཡང་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་དོ༎

༤༣. ཆོས་ཅན་གྱི་ཁྱད་པར་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་བསྒྲུབ་པ་ ནི་ [6]དཔེར་ན་ བྱེ་བྲག་པས་ [རྣལ་འབྱོར་] སྤྱོད་པ་ལ་ ཆོས་ཅན་ བདག་ ནི་ སེམས་དང་ལྡན་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ སེམས་ཀྱིས་བྱིན་བརླབས་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི། བདག་ སེམས་མེད་པ་ལ། ཇི་ལྟར་ སེམས་དང་ལྡན་པར་ སྒྲུབ་པར་[7]བྱེད་པས་ དེ་བཞིན་དུ་ གཏན་ཚིགས་ འདིས་ མི་རྟག་པ་ ཡང་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་དེ། རྣམ་པར་ཤེས་པ་ ནི་ མི་རྟག་པའི་ཕྱིར་རོ༎

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༤༨. ལྷ་པོ་ དེ་དག་གིས་ འགལ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ལྟར་སྣང་བ་ བསྟན་ཏོ ༎

༤༤. འགལ་བ་ མི་འཁྲུལ་བ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གང་དུ་ ཡང་[349a1] གཏན་ཚིགས་ཀྱི་ སྐྱོན་ མ་ ཡིན་ པས་ དེའི་ དཔེ་བརྗོད་པ་ ནི་ མི་ རིགས་ཏེ། དེའི་ དཔེ་ བརྗོད་ན་ གང་ ཕྱོགས་ཐམས་ཅད་ན་གནས་པ་དང་། བདག་ཉིད་ རང་དང་ [འབྲེལ་བ་ཅན་རྣམས་དང་] གཅིག་ཅར་ མངོན་པ་འབྲེལ་བ་ཅན་ དེ་ ནི་ ཐམས་ཅད་[2]དུ་འགྲོ་བ་ ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ ནམ་མཁའ་བཞིན། ཕྱོགས་ ཐམས་ཅད་ན་གནས་པ་ ནི་ རང་དང་འབྲེལ་བས་ ཅིག་ཅར་ སྤྱི་ དང་ མངོན་པར་འབྲེལ་བ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ པཻ་ལུ་ཀའི་ རང་བཞིན་གྱི་ གཏན་ཚིགས་ཀྱི་སྐྱོར་བའོ༎ ཡང་ སྐྱོར་བ་ [3]གཉིས་པ་ ནི་ པཻ་ཋ་རའི་ ཡིན་ཏེ། གང་ དམིགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་གྱུར་པ་ གང་དུ་ མི་དམིགས་པ་ དེ་ ནི་ [དེ་ན་] མེད་དེ། དཔེར་ན་ ཕྱོགས་ འགའ་ཞིག་ན་ བུམ་པ་ མེད་དོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ༎ དམིགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་གྱུར་པའི་ སྤྱི་ གསལ་བ་[4]དང་གསལ་བའི་བར་ན་ མི་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ ལྟ་བུའོ༎ མི་དམིགས་པའི་ གཏན་ཚིགས་ འདི་ དང་ སྔར་བསྟན་པའི་ རང་བཞིན་གྱི་ གཏན་ཚིགས་ འདི་ ཕན་ཚུན་གནོད་པས་ ཐེ་ཚོམ་ བསྐྱེད

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

པའི་ཕྱིར་རོ། མཐུན་པའི་[5]ཕྱོགས་ དང་ གཞན་པའི་ དཔེ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ འགའ་[1] ཡང་ མེད་དེ་ མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ འདི་ ཉིད་ ཆོས་མཐུན་པའི་ དཔེ་ ཡིན་ནོ།།

༧༦. དེར་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ཅི་ལྟ་བུ་ ཞིག་ཅེ་ན།།

༧༧. ཆོས་མཐུན་པའི་ རེ་ཞིག་ འདི་ལྟ་བུ་སྟེ།།

༧༨. སྒྲ་ ནི་ རྟག་ སྟེ་ ལུས་ཅན་[6]མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ལས་བཞིན་ ནོ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་མི་ཚང་བ་ ཡིན་ཏེ་ ལས་ནི་ མི་རྟག་[2] པའི་ཕྱིར་རོ།།

༧༩. སྒྲ་ ནི་ རྟག་ སྟེ་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ རྡུལ་ཕྲ་རབ་ བཞིན་ནོ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ སྒྲུབ་[3]པར་བྱེད་པ་མ་ཚང་བ་ ཡིན་ཏེ། [7]རྡུལ་ཕྲ་རབ་ ནི་ ལུས་ཅན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༨༠. སྒྲ་ རྟག་ སྟེ་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་[པའི་]ཕྱིར་ བུམ་པ་བཞིན་ནོ། ཞེས་བྱ་བ་ [སྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ དང་] སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་གཉི་ག་ མ་ཚང་བ་ ཡིན་ནོ།།

---

1 X དགའ. 2 NX རྟོག. 3 NX བསྒྲུབ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

༦༡. དེ་བཞིན་དུ་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཆོས་ལ་ཁྲི་ཆམ་ཟ་བའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ནི་ དཔེར་ན་ ཆོས་ཅན་ སྐྱེས་བུ་ [349b1]འགའ་ཞིག་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ ཡིན་ཏེ། སྨྲ་བའི་ཕྱིར་ ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལ། ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུའི་དཔེ་ལ་[1] འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ལ་ ཁྲི་ཆོམ་ཟ་སྟེ། གཞན་གྱི་སེམས་[2]ནི་རྗེས་སུ་རྟོགས་པར་ དཀའ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

༦༢. བསྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་ལ་ཁྲི་ཆོམ་ཟ་བ་ ནི་ དཔེར་ན་ སྐྱེས་བུ་གང་ཞིག་ འཆི་བའི་ཆོས་དང་ལྡན་པ་ ཡིན་ཏེ། ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་ལྡན་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བའི་གཏན་[3]ཚིགས་ ནི་ ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུའི་དཔེ་ལ་ ཁྲི་ཆོམ་ སྟེ། འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་ ཡང་ འདོད་ཆགས་དང་བཅས་པ་བཞིན་དུ་ གཡོ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

༦༣. ཆོས་གཉི་ག་ལ་ཁྲི་ཆོམ་ཟ་བའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ དཔེར་ན་ ཆོས་ཅན་ སྐྱེས་བུ་ འགའ་ཞིག་ ཐམས་ཅད་[4][མི་]མཁྱེན་པ་ ཡིན་ཏེ།

---

1 X ལས.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

ཞེས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བའི་ གཏན་ཚིགས་ ནི་ ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུའི་དཔེ་ལ་ བསྒྲུབ་པའི་བྱ་བ་དང་། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ ཡིན་ནོ།།

༡༥. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མེད་པ་ [5]དང་། རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མ་བསྟན་པ་དང་། རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ནི།།

༡༦. དེ་ལ་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མེད་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ གང་ སྨྲ་བ་ དེ་ ནི་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ ཡིན་ཏེ་ ལམ་པོ་ཆེའི་སྐྱེས་བུ་བཞིན་ནོ།། སྨྲ་བར་བྱེད་པ་ [6]དང་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ དག་ བྱ་བ་བྱེད་པའི་ངོ་བོ་བཀག་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༡༧. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མ་བསྟན་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ སྒྲ་ ནི་ མི་རྟག་སྟེ་ བྱས་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལྟ་བུའོ།། འདི་ལ་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ ཡོད་[1]ཀྱི་ཁྱབ་པ་ མ་བསྟན་[7]པ་ ཞེས་བྱ་བ་སྟེ། དེ་ ནི་ སྨྲ་བའི་ ཉེས་པས་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ནོ།།

༡༨. རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ ནི། དཔེར་ན་ གང་ [མི་]

1 X adds མེད.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

རྟག་པ་ དེ་ ནི་ བྱས་པ་ ཡིན་ཏེ། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ འདིར་ མི་[1]རྟག་པ་ ནི་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་[2] ཡིན་ཏེ། བསྒྲུབ་[350a1]པར་བྱ་བས་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལ་ ཁྱབ་པ་ བསྟན་པར་བྱ་བ་ཡིན་གྱི། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལ་ ཁྱབ་པར་ བསྟན་པར་བྱ་བ་ཡིན་ནོ། དེའི་ཕྱིར་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ནོ།།

༦༨. དེ་དག་ ནི་ ཆོས་མཐུན་[2]པའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ དགུ་ བསྟན་པ་ ཡིན་ནོ།།

༦༩. ཆོས་མི་མཐུན་པའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ བསྟན་པར་བྱ་སྟེ།

༧༠. སྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལྡོག་པ་མེད་པའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ནི། དཔེར་ན་ སྒྲ་ རྟག་ སྟེ་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར། རྡུལ་ཕྲ་རབ་བཞིན་ནོ།། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ འདིར་ རྡུལ་ཕྲ་[3]རབ་ ནི་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་དཔེ་ ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པ་ བསྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་ ལྡོག་པ་ ཡིན་ཏེ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་ ནི་ ལུས་ཅན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཆོས་

1 NX ནི.

2 X ས.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

རྟག་པ་ ནི་ ལོག་པ་ མ་ ཡིན་ རྟུལ་ཕྲ་རབ་ ནི་ རྟག་པའི་[4] ཕྱིར་རོ །།

༧༡. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པ་མེད་པ་ ནི། དཔེར་ན་ སྒྲ་ རྟག་སྟེ་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ལས་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ འདིར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཆོས་ རྟག་པ་ཉིད་ ལྡོག་པ་ ཡིན་ཏེ ། ལས་ནི་ མི་རྟག་པའི་ཕྱིར་རོ །། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་ [5]ནི་ ལྡོག་པ་ མ་ ཡིན་ཏེ ། ལས་ནི་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ །།

༧༢. གཉིས་ཀ་ལྡོག་པར་མེད་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ སྒྲ་ ནི་ རྟག་ སྟེ་ ལུས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ །། ཞེས་བྱ་བ་ འདིར་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་མི་མཐུན་[6]པའི་དཔེ་ལས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ དང་ ། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ ལྡོག་པ་ མེད་པ་ ཡིན་ནོ །།

༧༣. དེ་བཞིན་དུ་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ དང་ ། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ དང་ ། གཉིས་ཀ་ལྡོག་པ་[7]ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ལས །།

༧༤. བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལྡོག་པ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའི་ དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ནི ། དཔེར་ན་ སེར་སྐྱ་ལ་སོགས་པ་ ནི་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ མ་ཡིན་ཏེ ། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་རྟགས་སུ་གྱུར་[350b1]པའི་བསྟན་བཅོས་འབའ་ཞིག་

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

བྱས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ ཞེས་བྱ་བ་ འདིར་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་དཔེར་ བརྗོད་པ་ གང་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་[1] ཡིན་པ་ དེས་ ནི་ སྐར་མ་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པའི་ བསྟན་[2] དེ་ དཔར་ན་ [2]ཁྱུ་མཆོག་དང་འཕེལ་བ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ འདིར་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་དཔེར་བརྗོད་ལ། ཁྱུ་མཆོག་དང་འཕེལ་བ་ལ་སོགས་པ་ལས་ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་མ་ཡིན་པ་ ལོག་ གམ་ མི་ལོག་ ཐེ་ཚོམ་ ཡིན་ནོ ॥

༢༨. སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པ་[3] [3]ཐེ་ཚོམ་ཟ་བ་ནི། དཔེར་ན་ འདིར་གསུམ་རིག་པའི་ བྲམ་ཟེ་ སེར་སྐྱ་[4]དང་གཟེགས་ཟན་ལ་སོགས་པའི་ སྐྱེས་བུའི་ ཚིག་གཟུང་བར་བྱ་བ་ མ་ཡིན་ཏེ། འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ། ཞེས་བྱ་བ་ འདིར་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་[4]དཔེ་ བརྗོད་པ་ནི་ གང་གི་ ཚིག་གཟུང་བར་བྱ་བ་ དེ་ ནི་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ མ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ གོ་ཏ་མ་ལ་སོགས་པའི་ ཆོས་ཀྱི་བསྟན་བཅོས་རྩོམ་པ་ལྟ་བུ་སྟེ། གོ་ཏ་མ་ལ་སོགས་པ་ལས་ འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་དང་[5]ལྡན་པའི་ [སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་] ཆོས་ ལྡོག་པ་ལ་ ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའོ ॥

---

1 X མ.
2 X adds ཆོས.
3 PX omits པ.
4 NX སོར་སྐྱེ.

7

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

༧༦. གཅིག་ག་ཟློག་པ་ལ་ཕྱི་ཆོས་ཟ་བ་ ནི་ དཔེར་ན་ སེར་སྐྱ་ལ་སོགས་པ་ ནི་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་མ་ཡིན་ཏེ་ ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་ཀུན་དུ་འཛིན་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ལ། འདིར་ ཆོས་[6][མི་]མཐུན་པའི་ དཔེར་ བརྗོད་པ། གང་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་ དེ་ ནི་ ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་། ཀུན་དུ་འཛིན་པ་དང་ལྡན་པ་ མ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ ཁྱུ་མཆོག་དང་འཕེལ་བ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལ། ཁྱུ་མཆོག་ལ་སོགས་པ་ ཆོས་[7][མི་]མཐུན་པའི་དཔེ་ལས་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་ཉིད་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཆོས་དང་ ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་། ཀུན་དུ་འཛིན་པ་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་ ལྡོག་ གས་ མི་ལྡོག་ ཕྱི་ཆོས་ཟའི། ཕྱིར་མ་རྙེད་པ་ དངོས་པོ་ རྙེད་པ་ ནི་ ཡོངས་སུ་འཛིན་[351a1]པའོ། རྙེད་པ་ ཡོངས་སུ་མི་གཏོང་བ་ ནི་ ཀུན་དུ་འཛིན་པའོ॥ གཉིས་པ་དེ་དག་ ཀྱང་ ཁྱུ་མཆོག་ལ་ སྲིད་དེ། གདུགས་དང་། ཛ་ཡབ་དང་། ཛ་བོ་ཆེ་རྣམས་ ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་། ཀུན་དུ་འཛིན་པ་ ཐོས་པའི་[2]ཕྱིར་རོ॥

༧༧. ལྡོག་པ་མེད་པའི་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ དང་།

ལྡོག་པ་རབ་ཏུ་མ་བསྟན་པ་ དང་། ལྡོག་པ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ ཅེས་བྱ་བ་ལས།

༥༨. ལྡོག་པ་མེད་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ སེར་སྐྱ་ལ་སོགས་པ་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་མ་ཡིན་ཏེ། [3]སྨྲ་བའི་[1]ཕྱིར་རོ་ གང་དུ་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་མེད་པ་ མ་ཡིན་ཏེ་ དེ་ ནི་ སྨྲ་བ་ མ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་[2] རྡོའི་དུམ་བུ་ བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ལ། གལ་ཏེ་ འདི་ རྡོའི་དུམ་བུ་ལས་ ལོག་ མོད་ ཀྱི། འོན་ཀྱང་ འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་ ཐམས་ཅད་[4]ལས་ སྨྲ་བ་ ལོག་པ་ མ་ཡིན་ ཏེ། ཐེ་ཚོམ་ཟ་བའི་ཕྱིར་རོ༎

༥༩. ལྡོག་པ་མ་བསྟན་པ་ ནི་ དཔེར་ན་ སྒྲ་ མི་རྟག་ སྟེ་ བྱས་པའི་ཕྱིར་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ དོན་དམ་པར་ ཡང་དག་པ་ དཔེ་ཟིན་ ཡང་། སྨྲ་བ་པོའི་ ཉེས་པས་[5] དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ། གཞན་གྱི་དོན་གྱི་རྗེས་སུ་དཔག་པ་ལ་ སྨྲ་བ་པོའི་ ཡོན་ཏན་དང་། ཉེས་པ་ གཉིས་རྣམ་པར་ དཔྱད་པར་བྱ་བ་ ཡིན་པའི་ཕྱིར། འདི་ལྟར་ གང་ རྟག་པ་ ཐམས་ཅད་ ནི་ ངེས་པར་

1 X སྨྲས་པའི.

2 X adds བ.

མ་བྱས་པར་ མཐོང་ སྟེ། དཔེར་[6]ན་ ནམཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ། ཞེས་བྱ་བའི་ ཚིག་གི་རྣམ་པར་དབྱེ་སྟེ་ སྒྲ་བ་པོས་ བྱ་བ་པོ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བའི་ ལྡོག་པ་ མ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ལྡོག་པ་རབ་ཏུ་མ་བསྟན་པ་ཞེས་བྱའོ།།

༨༠. ལྡོག་པ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ ནི་ དཔེར་ན། གང་ མ་བྱས་[7]པ་ དེ་ ནི་ རྟག་པར་ མཐོང་སྟེ་ ཞེས་བྱ་བ་ འདིར་ ནི་ སྒྲུབ་བར་བྱ་[1]བ་ལོག་པ་ལ་ ཁྱབ་པར་ བསྟན་པར་བྱ་བ་ ཡིན་ནོ། དེས་ན་ གང་ དང་ གང་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལོག་པ་ དེ་ དང་ དེས་ ངེས་པར་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྡོག་པར་ འགྱུར་རོ།

༨༡. དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ བཅོ་[351b1]བརྒྱད་ བཤད་ཟིན་ཏོ།།

༨༢. ཕྱོགས་དང་གཏན་ཚིགས་དང་། དཔེ་ལྟར་སྣང་བ་ དེ་དག་ཉིད་ཀྱིས་ གཞོལ་བས་ སྒྲུབ་པར་མི་ཤེད་པའི་ཕྱིར་ [ཕྱིར་]གཞོལ་བས་སུན་འབྱིན་པ་ ཉིད་ ཉེ་བར་བཀོད་པ་ དེ་དག་ སུན་འབྱིན་པར་ འགྱུར་བ་ཡིན་ཏེ། ཕྱོགས་སྔ་མ་གཞོལ་བའི་ [2]མངོན་པ་འདོད་པའི་དོན་འགྲུབ་

1 X བྱེད.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

པ་ལ་ གེགས་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ ༎ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་མ་ཚང་བར་བརྗོད་པ་ ཉིད་ སུན་འབྱིན་པ་ ཡིན་ནོ་ཞེས་ བསྟན་ཏོ ༎ དེ་ལྟ་བས་ན་ སྒྲུབ་པར་ བྱེད་པ་བཞིན་དུ་ སུན་འབྱིན་པའི་མཚན་ཉིད་རྣམ་པར་དབྱེ་[1] སྟེ ། ལོགས་ [3]ཤིག་དུ་ མ་ བསྟན་ཏོ ༎

༨༣. སུན་འབྱིན་པ་ལྟར་སྣང་བ་ ནི་ སུན་འབྱིན་པ་ དེ་དག་ ཉིད་ ཕྱིར་རྒོལ་བས་ སླས་པ་ཡིན་ནོ ༎ གང་གི་ཚེ་ ཕྱོགས་སྔ་མ་རྒོལ་བ་ ཡང་དག་པ་ མ་ཡིན་པའི་ སྐྱོན་ བརྗོད་པ་ དེ་ སུན་འབྱིན་པ་ལྟར་ སྣང་བ་ ཡིན་ཏེ ། ལྟག་གཅོད་ [4]ཅེས་བྱའོ ༎ ཡང་དག་པ་མ་ ཡིན་པའི་སྐྱོན་བརྗོད་པ་ ནི་ ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་ལན་ དེ་ ལྟག་གཅོད་ ཡིན་ནོ་ཞེས་ བསྟན་ཏེ ། དཔེར་ན་ ཕྱོགས་སྐྱོན་མེད་པ་ལ་ ཕྱོགས་ ཀྱི་སྐྱོན་བརྗོད་པ་ དང་ ། གཏན་ཚིགས་སྐྱོན་མེད་པ་ལ་ གཏན་ཚིགས་ ཀྱི་སྐྱོན་བརྗོད་པ་[5]དང་ ། དཔེ་སྐྱོན་མེད་པ་ལ་ དཔེའི་སྐྱོན་བརྗོད་པ་ ནི་ སུན་འབྱིན་པ་ལྟར་སྣང་བ་ ཞེས་བྱ་བར་ རིགས་པའི་ ཕྱིར་རོ ༎

༨༤. དེ་ལ་ གཞན་དག་ ནི་ དམ་བཅའ་བ་ དང་ ། གཏན་

1 X བྱེ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ཚོགས་དང་། [དཔེ་ དང་།] ཉེ་བར་སྦྱོར་བ་ དང་། མཇུག་བསྡུ་བ་ དང་། ཡན་ལག་ལྔ་དང་ལྡན་པ་ ནི་ [6]སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ ཡིན་ ཞེས་ ཟེར་ཏེ། དཔེར་ན་ སྒྲ་ མི་རྟག་ སྟེ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ དམ་བཅའ་བའོ། བྱས་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ གཏན་ཚིགས་སོ།། གང་ བྱས་པ་ སྟེ་ ཐམས་ཅད་ ནི་ མི་རྟག་པར་ མཐོང་སྟེ། དཔེར་ན་ བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ལྟ་བུ་[7]ཞེས་བྱ་བ་ནི་ དཔེའོ།། དེ་བཞིན་དུ་ སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པ་ ཡིན་ནོ།། ཞེས་བྱ་བ་ནི་ ཉེ་བར་སྦྱོར་བའོ།། དེ་བས་ན་ མི་རྟག་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ མཇུག་བསྡུ་བ་ སྟེ། དཔེ་ལ་ རྟོགས་པའི་ནུས་པ་ཅན་གྱི་ གཏན་ཚིགས་ ཆོས་ཅན་ལ་ ཉེ་བར་སྦྱོར་བ་ ནི་ [352a1]ཉེ་བར་སྦྱོར་བ་ ཞེས་བྱའོ།། དམ་བཅའ་བ་ ཡང་ ཐོས་པ་ ནི་ མཇུག་བསྡུ་བ་ ཞེས་ བསྟན་ཏོ།། དེ་ལྟ་བུ་ནི་ ཤེད་དེ་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་དང་ ། ལྡོག་པ་ དང་། ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་ ཞེས་བྱ་བ་ ཡང་ གསུམ་པ་ཉིད་[2]ཀྱིས་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་དོན་འགྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༨༤. འདི་ལྟར་ རྩོད་པའི་དུས་སུ་ ཁྱབ་པ་སྔོན་དུ་འགྲོ་བ་ ཉིད་ཀྱི་ སྦྱོར་བ་ ཞེས་བྱ་སྟེ། གང་ བྱས་པ་ དེ་ ཐམས་ཅད་ ནི་ མི་རྟག་པར་ མཐོང་སྟེ། དཔེར་ན་ བུམ་པ་བཞིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི། དཔེ་[3]ལ་ བསྒྲུབ་

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

པར་བྱ་བས་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལ་ ཁྱབ་པ་བསྟན་པ་ ནི་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ ཞེས་ བསྟན་ཏོ ॥

༨༦. མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ ཡང་ བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ལོག་པས་ སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལོག་[1] ནི་ ལྡོག་པ་ ཅེས་པ་ བསྟན་ཏོ ॥ དཔེར་ན་ མི་རྟག་པ་མེད་པས་ [4]བྱས་པ་ཉིད་དུ་མི་འགྱུར་ཏེ ། དཔེར་ན་ ནམཁའ་ ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ ॥

༨༧. སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པའི་ཕྱིར་ ཞེས་བྱ་བ་ལས་ ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་ བསྟན་ཏོ ॥ དམ་བཅའ་བ་ དང་ མཇུག་[2]བསྡུ་བ་ ནི་ རྣམ་པ་ཐམས་ ཅད་དུ་ བརྗོད་པར་ མི་བྱའོ ॥

༨༨. དེ་བཞིན་དུ་ ཆོས་[5]མཐུན་པ་ཉིད་ཡིན་གྱི་སྦྱོར་བ་ལ་ རྗེས་སུ་ འགྲོ་བ་བརྗོད་པ་ཤུགས་ཉིད་ཀྱིས་ ལྡོག་པ་ཁོང་དུ་ཆུད་པས་ འདི་ ལོགས་ ཞིག་ཏུ་ མ་ བསྟན་ཏོ ॥ དཔེར་ན་ གང་ བྱས་པ་ དེ་དག་ ཐམས་ཅད་ ནི་ མི་རྟག་པ་ མཐོང་སྟེ ། དཔེར་ན་ བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ལྟ་[6]བུའོ ॥ སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ ཆོས་མཐུན་པ་ཉིད་ཅན་གྱི་སྦྱོར་

---

1 X ལ.   2 NX འཇུག.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

བའོ། ཆོས་མི་མཐུན་པ་ཉིད་ཅན་གྱི་སྦྱོར་བ་ནི་ ལྡོག་པ་བསྟན་པའི་ཞུགས་ཉིད་ཀྱིས་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་རྟོགས་པའོ།། འདིར་ ཡང་ རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་བརྗོད་པར་མི་[7]བྱའོ།། གང་ རྟག་པ་ དེ་ ནི་ མ་བྱས་པར་ མཐོང་སྟེ།། དཔེར་ན་ ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ།། སྒྲ་ ཡང་ བྱས་པ་ ཡིན་ནོ་ ཞེས་བྱ་བ་ནི་ ཆོས་མི་མཐུན་པའི་སྦྱོར་བའོ།།

༨༩. བསྒྲུབ་པ་ལྟར་སྣང་བ་ དང་། སུན་འབྱིན་པ་ལྟར་སྣང་བ་ བཤད་[352b1]ཟིན་ཏོ།།

༩༠. མངོན་སུམ་ ཅི་འདྲ་བ་ ཞིག་ཡིན་ ཞེ་ན། མངོན་སུམ་ ནི་ རྟོག་པ་དང་བྲལ་ ཞིང་ མ་འཁྲུལ་བ་ སྟེ་ དབང་པོ་ལ་ སོ་སོར་གནས་པ་ ནི་ བརྟེན་[1]པའི་ རྣམ་པར་ཤེས་པ་ གང་ ཡིན་པ་ དེ་ ནི་ མངོན་སུམ་ སྟེ། དབང་པོ་ལྔ་ལ་བརྟེན་[2]པའི་ ཤེས་པ་ ཡིན་[2]ནོ་ ཞེས་བྱ་བའི་ ཐ་ཚིག་གོ།། ཤིན་ཏུ་ལ་སོགས་པ་ གཞན་པ་ལ་སོགས་པའི་དོན་ལ་ གཉིས་པ་ ཞེས་བྱ་བ་ བྱེད་པ་པོའི་ བསྡུ་བས་ མངོན་[སུམ་]གྱི་སྒྲ་ ནི་ བརྗོད་པར་བྱ་བའི་

1 X རྟེན.

2 X བསྟེན.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ञ) फललक्षणम्

प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम् ॥ २० ॥

सुखदुःखसंवेदनं फलम् । सुखविपाकं कर्म दुःखविपाकं च, तत्पुनर्देहेन्द्रिय-विषयबुद्धिषु सतीषु भवतीति सह देहादिभिः फलमभिप्रेतम् । तथा हि प्रवृत्ति-दोषजनितोऽर्थः फलमेतत्सवं भवति ।

तदेतत्फलमुपात्तमुपात्तं हेयम्, त्यक्तं त्यक्तमुपादेयमिति नास्य हानोपादान-योर्निष्ठा पर्यवसानं वास्ति । स खल्वयं फलस्य हानोपादानस्रोतसोह्यते लोक इति ॥ २० ॥

(ट) दुःखलक्षणम्

अथैतदेव—

बाधनालक्षणं दुःखम् ॥ २१ ॥

बाधना=पीडा, ताप इति । तयाऽनुविद्धमनुषक्तमविनिर्भागेन वर्तमानं दुःखयोगाद् दुःखमिति । सोऽयं सर्वं दुःखेनानुविद्धमिति पश्यन् दुःखं जिहासु-

---

प्रवृत्ति तथा दोष से जनित सुख-दुःखरूप अर्थ 'फल' कहलाता है ॥ २० ॥

सुख-दुःख को स्वसम्बन्धितया अनुभव करना ही फल है । देह, इन्द्रिय, विषय, बुद्धि की समष्टि में सुखविपाक तथा दुःखविपाक—यों दो प्रकार का कर्म होता है. इसलिये यहाँ देहादिकों के साथ उपर्युक्त लक्षण वाला फल अभिप्रेत है । निष्कृष्टार्थ यह है कि सुख-दुःखसंवेदन तथा शरीरादि के साथ सम्बन्ध—ये दोनों प्रवृत्ति-दोष जनित हैं, अतः दोनों ही 'फल' कहलाते हैं ।

यह उक्त प्रकार का फल पुनः पुनः प्राप्त कर छोड़ दिया जा सकता है, तथा इसे वार वार छोड़कर पुनः प्राप्त करने की इच्छा हो जाती है, इसीलिए इसके हान (त्याग) या उपादान (ग्रहण) की कोई सीमा नहीं है, कोई अन्त नहीं है । यह समस्त संसार इसी हानोपादान-प्रवाह में पड़कर सुख-दुःख भोगता रहता है ॥ २० ॥

यह शरीरादि फलान्त प्रमेय ही—

बाधना (पीड़ा) 'दुःख' कहलाता है ॥ २१ ॥

'बाधना' कहते हैं पीड़ा अर्थात् ताप को । उसी से अनुस्यूत, उसके विना न रहने वाला, उसी में ओतप्रोत दुःखपरिणाम के कारण को दुःख कहते हैं । यह सब दुःख से अनुस्यूत है, दुःख के विना नहीं रह पाता, अतः यह सब कुछ 'दुःख' है ।

इस प्रकार प्रमाता 'यह समग्र दृश्यमान जगत् दुःख है'—ऐसा विचार करता हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र मिथ्याज्ञानं तत्र रागद्वेषाविति। प्रत्यात्मवेदनीया हीमे दोषाः कस्माल्लक्षणतो निर्दिश्यन्त इति ? कर्मलक्षणाः खलु रक्तद्विष्टमूढाः। रक्तो हि तत्कर्म कुरुते येन कर्मणा सुखं दुःखं वा लभते; तथा द्विष्टः, तथा मूढ इति।

'दोषा रागद्वेषमोहाः'–इत्युच्यमाने बहु नोक्तं भवतीति ॥ १८ ॥

(झ) प्रेत्यभावलक्षणम्

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ १९ ॥

उत्पन्नस्य क्वचित्सत् वनिकाये मृत्वा या पुनरुत्पत्तिः स प्रेत्यभावः। उत्पन्नस्य =सम्बद्धस्य। सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः। पुनरुत्पत्तिः =पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः। पुनरित्यभ्यासाभिधानम्, यत्र क्वचित्प्राणभृन्निकाये वर्त्तमानः पूर्वोपात्तान्देहादीन् जहाति तत्प्रैति, यत् तत्रान्यत्र वा देहादीनन्यानुपादत्ते तद्भवति। प्रेत्यभावः = मृत्वा पुनर्जन्म।

सोऽयं जन्ममरणप्रबन्धाभ्यासोऽनादिरपवर्गान्तः प्रेत्यभावो वेदितव्य इति ॥ १९ ॥

साधारणजनों द्वारा हमेशा ही इन दोषों का अनुभव करते रहने से ये लक्षण विना वताये भी जाने जा सकते हैं, पुनः इनका पृथक् लक्षण करने की क्या आवश्यकता ? उन कर्मों के कारण ही पुरुष रागी, द्वेषी तथा मूढ होते हैं; रागी पुरुप वही कर्म करता है, जिससे उसे सुख या दुःख मिलता है, इसी तरह द्वेषी तथा मोही पुरुप के विपय में समझना चाहिए; तात्पर्य यह निकला कि द्वेष प्रवृत्ति के कारण (जनक) हैं, यह 'जनकत्व' दिखाने के लिये ऐसा लक्षण किया गया है।

'राग द्वेष मोह दोष हैं'—ऐसा कहने पर इनकी गणना-मात्र होती, इनका लक्षण नहीं होता, अतः 'प्रवर्तनालक्षणा दोषाः'—ऐसा ही सूत्र पढ़ा गया ॥ १८ ॥

पुनः उत्पन्न होना (मर कर जन्म लेना) प्रेत्यभाव है ॥ १९ ॥

उत्पन्न हुए प्राणी का मरकर पुनः जन्म लेना प्रेत्यभाव कहलाता है। उत्पन्न का अर्थ है 'सम्वद्ध'। किस से सम्वन्ध ? देह, इन्द्रिय, मन बुद्धि, वेदना से। इस तरह पुनरुत्पत्ति से मतलव है आत्मा का देहादि से सम्वन्ध (क्योंकि आत्मा के नित्य होने से उसमें उत्पाद या मरण नहीं होता, अतः 'सम्वन्ध' कहा गया है)। 'पुनः' शब्द से अभ्यास (वार वार होना) में तात्पर्य है। जहाँ कहीं प्राणसंयुक्त शरीर में रहते हुए पूर्वोपात्त देहादि को छोड़ना—'प्रैति' (मर जाता है) कहलाता है, तथा वहाँ से अन्यत्र दूसरे देहादिक का ग्रहण कर (सम्वन्ध जोड़) लेता हुआ—'भवति' (जन्म लेता है)। इन दोनों शव्दों के संयोग से व्युत्पन्न 'प्रेत्यभाव' का अर्थ है—'मर कर फिर जन्म लेना'।

इस जन्म-मरण की परम्परा का पुनः पुनः होना अनादि है, अपवर्ग जव होगा तभी इसका अन्त होगा—यह इस प्रेत्यभाव के विषय में समझ लेना चाहिये ॥ १९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu